प्रकाशक :—
अणुव्रत-समिति
बम्बई शाखा
उद्योग नगर
बम्बई.

प्रथम संस्करण ३०००
मूल्य १)

मुद्रक :
विद्यापीठ प्रेस, फारबेट स्ट्रीट,
बम्बई २६

प्रस्तावना

नैतिकता के पथ पर चलना आज बड़ा कठिन है फिर भी हजारों लोग इस पथ को खोज रहे हैं और उस पर चलने के लिए उत्सुक हैं। ऐसे लोगों के लिए अणुव्रत-आंदोलन और उसके नियम अवश्य सहाय भूत होंगे।

किसी भी संस्था या आन्दोलन की स्थापना व उसके जीवन के सम्बन्ध में दो बातें मुख्य होती हैं. .

१—संस्थापक का व्यक्तित्व और जीवन।

२—संस्था के नियम और सिद्धान्त, जिनको अमल में लाने पर आन्दोलन टिक सकता है, जीवन पा सकता है और सफल हो सकता है।

अणुव्रत—आन्दोलन के स्थापक आचार्य श्री तुलसी का परिचय प्रस्तुत पुस्तक में दिया गया है। इस स्थान पर उनके सम्बन्ध में सिर्फ इतना ही कहना काफी होगा कि १२ वर्ष की कोमल वय में आप संयम की उच्चतम साधना में प्रवृत्त हुए। लगभग ग्यारह वर्ष तक आपने विभिन्न शास्त्रों व साहित्यिक विषयों का गहन अध्ययन किया और २२ वर्ष की वय में तेरापंथ संघ के आचार्यपद के उत्तरदायित्व को सम्भाला। संघ के साधु-साध्वीगण उनके लोक कल्याणकारी कार्यों में समुचित सह-योग दे सकें इसके लिये आपने विद्या और ज्ञान विकास के लिये अह-र्निश प्रयत्न किया।

आपने देखा—आज का लोक जीवन दिन पर दिन नैतिक ह्रास और आध्यात्मिक पतन की ओर चला जा रहा है। आपको यह

आवश्यक लगा कि उसे जीवन विकास का सही मार्ग बताया जाय। आचार्य श्री की इस अन्तः स्फुरण ने अणुव्रत आन्दोलन को जन्म दिया जो बिना किसी प्रकार के जाति, वर्ण, लिंग और देश आदि के भेद से सर्वथा अछूता आत्म निर्माण का एक सुसंगठित कार्यक्रम है। आचार्य तुलसी और उनके आज्ञानुगत साधु--साध्वीगण आत्म-साधना के साथ-साथ जन-जीवन को उन्नत और विकसित बनाने के उद्देश्य से देश के कोने-कोने में पाद-विहार करते हुये अध्यात्म-भावना का प्रसार कर समाज और राष्ट्र को एक महत्त्वपूर्ण देन दे रहे है।

प्रस्तुत प्रयास को अब तक कितनी सफलता मिली है उसका एक छोटा सा दृष्टान्त लीजिये—संघ के एक सदस्य को उसके स्नेही की ओर से अदालत में अमुक प्रकार की गवाही देने के लिये दबाव डाला गया किन्तु उसने झूठी गवाही देने से इनकार कर दिया। परिणाम स्वरूप दोनों का सम्बन्ध टूट गया। अदालत की दूसरी बैठक में न्यायाधीश ने यह जानकर विश्वास किया कि यह अणुव्रती है जैसी बात होगी वैसी यह कहेगा। आचार्य श्री का उपदेश जिसे हृदयग्राही हो जाता है वह उसका पालन किस सुन्दर ढंग से करता है, इसका यह एक सामान्य दृष्टान्त है।

आचार्य श्री की दृष्टि में संख्या का महत्त्व नही है। एक भी व्यक्ति उनके सिद्धान्तों को जीवन सूत्र बना कर उनपर सही रूप में अमल करे तो उन्हें संतोष है। फिर संख्या का तो प्रश्न ही कहां ?

प्रस्तुत पुस्तक में देश के जन नेताओं, विचारकों और विद्वानों द्वारा अणुव्रत आन्दोलन के सम्बन्ध में प्रगट किए गए विचारों का संकलन है। उन्होने आन्दोलन की उपयोगिता, व्यावहारिकता और

सामाजिक जीवन में विशुद्धीकरण आदि-आदि विवेचनीय प्रसंगों का गहराई से उल्लेख किया है। लगता है कि आचार्य श्री ने जिस लोकोत्थान की भावना को लेकर इस आन्दोलन का प्रारम्भ किया उसका समुचित मूल्यांकन विचारकों ने किया। इससे जन साधारण भी आन्दोलन के निकट पहुँच प्रेरणा पायेंगे।

आचार्य श्री द्वारा लिखा गया अणुव्रत और अणुव्रती संघ शीर्षक लेख वास्तव में आन्दोलन का घोषणा पत्र (Manifesto) जैसा है। जो इस आन्दोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि और नैतिक विश्लेषण के लिये एक मजी हुई दृष्टि देता है।

ऐसी उपयोगी पुस्तक का देश की सब भाषाओं में प्रकाशन होना चाहिए। अंग्रेजी और संस्कृत में भी। ये सब लेख घर-घर पढ़े जाने चाहिये।

सद्भाग्य से अपने राष्ट्रपति बहुत ही धर्मनिष्ठ व्यक्ति और भारतीय संस्कृति के महान् संरक्षक हैं। आन्दोलन के प्रति उनकी दृष्टि पृष्ठ पर पढ़कर देखिये। कि वे आचार्य के कल्याणकारी कार्यों को कितना आदर देते हैं। आप कहते हैं...''आज की स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण काम हो रहा है जिसकी सफलता प्रत्येक विचारशील व्यक्ति चाहता है और चाहता रहेगा।

मेरी यह सद्कामना है कि पाठकगण प्रस्तुत पुस्तक का समुचित उपयोग करेंगे व इससे जीवन उत्थान की सतत प्रेरणा लेंगे।

—कृष्णलाल मोहनलाल जवेरी

प्रकाशकीय

भारतीय दृष्टि में वह जीवन सफल नही है जो एकमात्र धन वैभव प्रतिष्ठा और भौतिक ऐश्वर्य का जीवन हो। सफलता इसमें है कि जीवन में अधिक से अधिक सदाचरण, न्याय, नीति, प्रामाणिकता और आत्मनियमन हो। जब-जब व्यक्ति इन गुणों से विरहित हुआ उसका जीवन विशृंखल, अशान्तिपूर्ण और असन्तुष्ट बना। यह वैयक्तिक विशृंखलता, अशान्ति और असन्तोष व्यक्ति से बढते-बढते समष्टि तक पहुँचा। समाज का नैतिक और चारित्रिक जीवन डगमगा उठा। मानवता विलख उठी। जैसे प्रतिकूल और आत्म-पराङ्मुख, समय में ऐसे महापुरुष इस भू मडल पर अवतीर्ण हुये जिन्होंने इस विषमता और अनिति के खिलाफ एक क्रान्ति की। युग ने करवट बदली। उसमें चैतन्य का संचार हुआ। वह चरित्र तथा नीति की ओर मुड़ा।

यह खेद की बात है कि आज भी एक ऐसी ही अनैतिक, अनाचार, असत्य और अविश्वास की परिस्थिति है। स्वार्थ के जाल में व्यक्ति इस कदर फँसता जा रहा है कि उसे सत्य-असत्य का, न्याय-अन्याय का, उचित-अनुचित का मान तक नही। ऐसे युग में आचार्य श्री तुलसी ने अध्यात्ममूलक नैतिक क्रान्ति का एक महान् उपक्रम ससार के समक्ष प्रस्तुत किया है जो अणुव्रत आन्दोलन के नाम से विदित है। इसका लक्ष्य है—व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में आत्म-चेतना का उभार करते हुये नैतिक जागृति लाई जाये। फलतः समष्टि या समाज में अपना प्रसार पाये।

इस नैतिक विशुद्धि मूलक कार्यक्रम को देश के विचारकों ने निकट से देखा, समझा, सोचा। समय समय पर उन्होंने अपना विचार, सदेश निवन्ध या भाषणो के रूप में व्यक्त किये। आज का मानव सम्प्रदाय इस आन्दोलन के माध्यम से नैतिकता की ओर किस हद तक प्रगति कर सकता है इस ओर उनके विचार प्रकाश डालते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक ऐसे ही विभिन्न जन-नेताओ, विचारको, पत्रकारो और साहित्यकारो के विचारो का सकलन है। अणुव्रत समिति को इसका प्रकाशन करते गौरव का अनुभव होता है। आशा है नैतिकता प्रेमी पाठक इसे पढ़ेगें, अनुशीलन करेंगे, मनन करेंगें और जीवन में प्रेरणा लेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रस्तावना गुजरात के सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी और शिक्षाविद् दीवान वहादुर श्री कृष्णलाल जवेरी ने अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकाल कर लिखी, इस सहयोग के लिये समिति उनके प्रति आभार प्रदर्शन करती है।

उद्योगनगर, वम्वई
विजयादशमी
७-१०-१९५४

जेठालाल जवेरी
संयोजक
अणुव्रत समिति
वम्वई शाखा

विषय-सूची

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक—
आचार्य श्री तुलसी (परिचय)

आचार्य श्री तुलसी का [illegible] व्यक्तित्व जन जन का एक नूतन आकर्षण बन रहा है। [illegible] शरीर, गौर वर्ण, भव्य ललाट, तेजोमय नेत्र तथा [illegible] से भी [illegible] व्यक्तित्व जन कल्याण के तीव्र प्रयत्नों व [illegible] में प्रस्फुटित हुआ है। आप अनेकानेक सामर्थ्यों के [illegible] हैं। [illegible] की मरीचिका में हताश मानव की [illegible] पर [illegible] है।

परिचय.—

आपका जन्म [illegible] १९७१ [illegible] 'लाडनूं' शहर में हुआ। ११ वर्ष की [illegible] स्वरूप, तेरापंथ के [illegible] श्री कालूगणि [illegible] दीक्षा संस्कार हुआ। जीवन के [illegible] निर्माण के रहे। आपकी [illegible] और अमूच्छित [illegible] पद्धति ने [illegible] में ही [illegible] संघ के विरल और [illegible] बना दिया। 'होनहार विरवान के होत [illegible] करती हुई [illegible] की कड़ी आपके [illegible] की आयु में पूर्ववर्ती आचार्य [illegible]

एक अविनायक वन। एक २२ वर्षीय युवक के हाथ में इतने बड़े शासन की वागडोर, इतिहास के पृष्ठों में एक नई घटना थी।

अणुव्रत-अनुष्ठान

वैसे तो एक मुमुक्षु का जीवन स्वयं अनुष्ठान है। वह ऐसी ज्योति है जिसके स्फुलिंग अनवरत वनते रहते हैं पर विगड़ते नहीं। आचार्य श्री ने जब से दायित्व संभाला तभी से आपका हृदय जनता के आध्यात्मिक पतन से वेदनाशील वन रहा था। इस दिशा में आपका अथक परिश्रम चालू था। अपने शिष्य–समुदाय को भी सार्वजनिक नैतिक अभ्युदय में आपने लगाया। तथा प्रकार के विविध प्रयत्नों का व्यवस्थित रूप ही अणुव्रत–आन्दोलन है। वि. सम्वत् २००५ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को आपने अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया। उस समय आपकी अवस्था लगभग ३४ वर्ष की थी। इस अनुष्ठान के लिए वह एक सुन्दर समय था। भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ। देश के नाना कर्णधार स्थितियों को संभालने में लगे थे। शिक्षा, स्वास्थ्य,अर्थ आदि प्रयत्नों के नाना पहलू थे। आप एक अन्तर्मुख परिव्राट् थे। लोगो की दृष्टि जहाँ बाह्य सुधारों पर टिकी, समस्याओं का मर्म आपने अन्तः सुधारों में पाया। लोग जहाँ आर्थिक-दरिद्रता के अपनयन में लगे वहाँ आप नैतिक दरिद्रता का अवसान करने में जुटे। लोग जहाँ पार्थिव शरीर की निरामयता में ही पूर्ण स्वास्थ्य देखते थे, आपने अधिक महत्व आत्मीय निर्विकारता को दिया। शिक्षा का मूल आधार, जहाँ लोगों ने भौतिक ज्ञान विज्ञान को माना, वहाँ आपने आत्म अन्वेषण पर वल दिया। परिणामतः आपका अणुव्रत अनुष्ठान जीवन के वाह्य और अन्तर पहलुओं का संतुलन रखने में सहायक हुआ और हो रहा है। अस्तु अणुव्रत आन्दोलन ने आप को एकाएक देशवासियों के सम्मुख ही नहीं ला दिया अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी आपको एक चर्चा का विषय बना दिया है।

कर्मठ जीवन

कोमल अवयवों में निरलसता का न्यास जैसा आपके [illegible] पड़ता है वैसा बहुतों के नहीं । आप एक विस्तृत धर्मसंघ के आचार्य हैं । ६५० के लगभग साधु-साध्वियां और लाखों की संख्या में अनुयायी आप का अखण्ड नेतृत्व मानते हैं, और अब अणुव्रत कार्यक्रम को लेकर आप कोटि कोटि जनता के हृदयों में स्थान पा रहे हैं । फिर भी एक अहोरात्र में आप लगभग १८ घंटे परिश्रमशील रहते हैं । पाद-विहार, विज्ञ शिष्यों को व्याकरण, न्याय और दर्शन आदि [illegible] विषयों पर अध्यापन, सहस्रों की जनता में प्रेरणादायी प्रवचन, आगन्तुकों के साथ तत्त्व-चर्चा, ग्रन्थप्रणयन आदि आपके दैनिक कार्यक्रम [illegible] । विशेषता यह है व्यस्तता ज्यों ज्यों अधिक होती है त्यों त्यों [illegible] कर्मठ भाव और भी अधिक निखर पड़ता है । कार्यक्रमों के [illegible] भार में भी आप ऊबते नहीं । आपका अनुचिन्तन [illegible] मानता है ।

समन्वेता विचारक

चिन्तन के क्षेत्र में भी आप गहरे पहुँचे हैं । आज की नाना समस्याओं पर मंजे हुए और संतुलित विचार आप देते हैं । आपके विचार में समन्वय की प्रधानता रहती है । एकान्त आग्रह में [illegible] समस्यायें घुलती हैं और समन्वय की [illegible] । केवल आग्रह मनुष्य को वस्तुस्थिति से [illegible] । [illegible] युग में संस्कृति की बात आई । एक पक्ष ने [illegible] पर बल दिया तो दूसरे ने उसे अपरिवर्तनीय [illegible] । आचार्यवर ने विचार दिये—[illegible] मान नहीं है । हेय और उपादेय का [illegible]

ही निर्भर रहता है। आग्रह दोनों ओर का निर्दोष नही है। एकओर संस्कृति के नाम पर कुसंस्कार और अन्धविश्वास का आश्रय है तो एक ओर प्रगति के नाम पर गर्हित तथ्यों का अन्धानुकरण। मध्यम मार्ग यही है मनुष्य जीवन मे विकृति का परिहार करता चला जाये ,संस्कृति स्वयं उदित होती रहेगी।

पूंजीवाद और साम्यवाद के जागरूक प्रश्न पर आपके विचार है, अमर्यादित अर्थ–लालसा समस्या का मूल है। पूंजीपति शोषण की सुरक्षा दान की आड़ मे चाहते है। वह युग बीत गया है। आज के त्रस्त जन हृदय में विप्लव है। वह दान उसका भुलावा नही हो सकता। आज संग्रह की भावना को मिटाने की आवश्यकता है। संग्रह की निष्ठा आज हिंसा को निमन्त्रण है। आवश्यकताओ का अल्पीकरण अपरिग्रह की दिशा है यही अर्थवाद और साम्यवाद के तनाव को मिटाने का व्यवहार्य मार्ग है।

विविध धार्मिकों का, धर्म संप्रदायों का पारस्परिक व्यवहार पावन कैसे रहे उनमें सौहार्द की अभिवृद्धि कैसे हो? इस पर आपने बताया– भेद और ऐक्य मनुष्य की भावना पर निर्भर है। वस्तु में जहाँ विषमता है वहाँ समता भी। भूल यहाँ होती है मनुष्य समता की उपेक्षा कर, विषमता को अधिक महत्व दे देता है। यह प्रामाणिक तथ्य है। बहुत सारे धर्मों में भेद की अपेक्षा समता के तथ्य अधिक हैं। किन्तु लोग अधिक की उपेक्षा कर कुछ को ही महत्व दे देते है, और वह भी अवैध विधि से। यही कारण है पारस्परिक सम्बन्धो में कटुता फूटती है। आज के युग में आवश्यक है धर्म सम्प्रदाय व धार्मिक लोग भेद की उपेक्षा कर समता को अधिक महत्व दें। इससे सम्बन्धो में ऐक्य और सौजन्य का संचार होगा। अस्तु, इसी प्रकार अन्यान्य समस्याओ का

समाधान भी आप सामञ्जस्य के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। उचित ही है यदि हम उन्हें समन्वेता विचारक कहें।

हम मंगल कामना करते हैं, चिरकाय स्थिरधी, अणुव्रत अनुष्ठाता आचार्य तुलसी शतजीवी हों, उनका जीवन मानव को नव आशाओं में जोड़ देने वाला हो।

अणुव्रत-आन्दोलन-एक महत्वपूर्ण कार्य

—राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

पिछले दो तीन वर्षों में आचार्य श्री तुलसी महाराज के दो तीन बार दर्शन मुझे प्राप्त हुए और जो थोड़ी देर तक उनके उपदेश सुनने का और साथ वार्तालाप का मुझे सुअवसर मिला उनका मेरे उपर वह प्रभाव पड़ा कि अणुव्रती संघ की स्थापना करके और उसके काम को बढाने के लिए अपना समय लगा कर आचार्यश्री देश के लिए कल्याणकारी काम कर रहे हैं। यों तो उनके बिना न कोई व्यक्ति और न कोई देश उन्नति कर सकता है, पर विशेष करके ऐसे समय में जब हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर अपना घर स्वयं संभालने लग गये हैं उनकी आवश्यकता और अनिवार्यता और भी अधिक हो जाती है। इसलिए संघ की स्थापना एक महत्वपूर्ण काम हुआ है और मैं आशा करता हूँ कि वह दिन प्रति दिन जैसे आज तक बढ़ता आया है उससे भी अधिक प्रगति के साथ बढता ही जाये। यह संतोष की बात है कि आचार्यजी काल और देश की परिस्थिति को हमेशा सामने रखकर कार्यक्रम निर्धारित करते हैं और जो भिन्न भिन्न श्रेणी के लोग हैं, जिनकी भिन्न भिन्न समस्यायें होती हैं उन सबमें घुस कर भिन्न भिन्न रीति से संगठित रूप में सदाचार और चरित्र को प्रोत्साहन देने का काम किया जा रहा है वह काम तो धर्मगुरुओं का ही हमेशा से रहा है और आज भी है और जितना असर धर्माचार्यों का चाहे वह किसी भी धर्म अथवा पंथ के क्यों नहीं हो लोगों पर पड़ता है उतना दूसरों का नहीं। आज की स्थिति में वह अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण काम हो रहा है। जिनकी सफलता प्रत्येक विचारशील व्यक्ति चाहता है और चाहता रहेगा।



देश के नैतिक पुनरुत्थान में अणुव्रत कहाँ तक योग दे सकता है?

—श्री जैनेन्द्रकुमार

उत्थान तो नैतिक ही होता है। देह बढ़ जाय, या [illegible] [illegible] जाय, या आदमी के पास धन सम्पत्ति बढ़ जाय, तो इसको [illegible] अर्थ में मनुष्य का उत्थान नहीं कह सकते। मनुष्य मादा नहीं है, न पदार्थ है, न उसे बाहर की दूसरी चीजों के मान में नापा जा सकता है। वह तो आत्मवान् है। अंदर की श्रद्धा, साहस, [illegible] आदि में ही उसका सही मान और मूल्य है। दूसरे देश साधन, सम्पत्ति या उत्पादन के परि-माण से जीवन के ऊँचे मान का निर्णय अगर करते हों तो हो सकता है, अव्वल तो सही वह वहाँ के लिए भी नहीं है। लेकिन भारतवर्ष में तो वे बिल्कुल ही नहीं चाहिए। यहाँ की संस्कृति इस प्रकार की नहीं है, न वह इतनी सामयिक या पल्लव-ग्राही है। वह मनुष्य के मूल [illegible] जाती है और उसके अभ्यन्तर से जुड़ी हुई है।

अणुव्रत में प्रधान व्रत है। व्रत का अर्थ मनुष्य को नाना [illegible] से बचाना है। मामूली तौर पर आदमी यहाँ [illegible] रहता है। चारों तरफ की चाहें उसे सताती हैं और सभी कुछ वह पा लेना चाहता है। ऐसे वह कुछ भी नहीं पाता, केवल [illegible] पाता है। [illegible] को [illegible] छोड़ने से मनुष्य का यही हाल होने पाता है। पानी के धोखे में [illegible] बालू पर भागता हुआ हिरन अन्त में प्यास नहीं बुझा पाता केवल [illegible]

कर मर जाता है। वैसेही इच्छाओं में बहते हुए और भागते हुए आदमी का हाल होना बदा है। वह बड़ा यत्न करता है और उखाड़-पछाड़ करता है, अन्त समय पाता है कि वह खाली हाथ है। वह लुट चुका है और अपने अन्तर का सब-कुछ गँवा चुका है।

व्रत इसी के खिलाफ चेतावनी है। यानी उससे हमें तट मिलता है। नदी के पास किनारे न हों तो जैसे वह फैलकर सूख जायगी, दूर तक नहीं जा सकेगी वैसेही व्रत के जरिए आदमी इच्छाओं को किनारे नहीं दे पावेगा तो उसके व्यक्तित्व का वेग निष्फल चला जायेगा और यह अधिक ऊँचे या आगे नही जा सकेगा। इस तरह व्रत जीवन को सफल और उन्नत करने का उपाय है। लोग कहते है कि धर्म में नकार होता है। यह न करो, यह न चाहो, वह न देखो, और वह काम न करो। धर्म में इस तरह के निषेधादेश बहुत मिलते हैं। पर आजकल लोग जैसे ऐसी सीमाओं और मर्यादाओं को पसन्द नही करते। वे मानते हैं, जीवन ऐसे रुकता है, प्रशस्त नही होता।

पर यह भ्रान्त धारणा है। नकार तो रेखा है जिसके अन्दर क्षेत्र घिरता है। ऐसा तो शून्य है जो क्षेत्रहीन है, वही रेखा के बिना हो सकता है। इस प्रकार की निषेध-रेखाओं से घबराकर कोई शून्य ही बन सकता है, सफल नही बन सकता। असंयत व्यवहार से कभी किसी को सम्पन्नता नहीं मिली है। संयम में स्वेच्छा-पूर्वक मन को रोकना होता है। यह सही है कि बाहरी अंकुश लाभ नहीं करता लेकिन अंकुश यदि भीतर का भी न हो तो ऐसा निरंकुश प्राणी स्वयं अपने लिए अन्त में भार स्वरूप हो जाता है। कहाँ तो वह ऐसे मुक्त बनना चाहता है, पर फल यह होता है कि इस प्रकार वह अपने को अतिशय बन्धन में और चारों ओर से जकड़ा हुआ अनुभव कर आता है।

अणु अर्थात् स्वल्पांश। कहा है—"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" इस तरह व्रत का स्वल्पारम्भ भी हमारे विकृत-जीवन को सही दिशा में मोड़ सकता है।

एक सभ्यता है जो आदमी को और उसकी इच्छाओं को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होने का लोभ देकर उसे खुला छोड़ देना चाहती है। वह उसे अपने अधिकार की चेतना देती है और बताती है कि उसका अधिकार अमित और असीम है। इस प्रेरणा के बल पर वह बढ़ना चाहता है और सुखोपभोग की सब सामग्री अधिकाधिक अपने लिए बटोरना चाहता है। इस प्रयत्न में वह दूसरों के दुःख-सुख या किसी प्रकार की नीति, अनीति, कर्तव्याकर्तव्य की धारणा पर अटकना नहीं चाहता। निःसन्देह वैसी प्रेरणा में से खूब तरक्की हुई है। मशीनें बनी हैं और उनसे धड़ाधड़ माल तैयार हो रहा है लेकिन यह कहना कठिन है कि उससे आदमी का त्रास कम हुआ है या कुछ बढ़ा है। कारण उसको आदमी अपने लिए चाहता है और इसमें दूसरे के साथ के अपने सम्बन्ध की स्निग्धता का विचार नहीं रखता है। अपने अधिकारों के पीछे दूसरे के अधिकार का ध्यान नहीं रखता है, यानी अधिकार की धारणा में कर्तव्य की भावना को डुबो देता है।

दूसरी तरफ वह संस्कृति है जो बल कर्तव्य पर देती है। जिसमें आदमी की निजी उन्नति दूसरे से विरोधी नहीं होती। ऐसे वह सामाजिक और सार्वजनिक होती है। व्यष्टि के ऐसे संस्कार में ही समष्टि का सुख हो सकता है।

आज जबकि राजनीति का दूसरे शब्दों में अधिकारस्पर्धा का भाव सबके मनों में छाया हुआ है, यह आवश्यक है कि कोई आवाज उठती, जो इस मरीचिका से आदमी का उद्धार करती। अणुव्रत की

अपने से दूर चला जाता है और खुद अपने लिए अजनबी-सा हो जाता है। लेकिन जैसे इंजिल में लिखा है—"आदमी सारी दुनियां को भी पा जाय तो उससे क्या होता है। अगर वह अपना आपा खो बैठे।" मनुष्य जाति कुछ ऐसे ही संकट में है। दुनियां को तो उसने बहुत सारा पा लिया है लेकिन अपने में वह खोई-सी लगती है। सच है कि उसके अन्तर में एक मन्थन-सा मचा है। मानव जाति के विचारक और चिन्तक लोग सब कहीं चिन्तित हैं और पाना चाह रहे हैं कि चूक कहां है। हाल की प्रगति जहां हमें डाल गई है वह तो गड्ढा है, स्वर्ग नहीं, नरक है, उसमें हर घड़ी युद्ध के आ फटने की विभीपिका छाई रहती है? आदमी व्यस्त रहता है लेकिन त्रस्त भी रहता है। विचारक मानो फिर से खोज करके पा रहे हैं कि उनके और उनकी प्रगति के आधार में सही आदर्श नहीं थे और सही मूल्य नहीं थे। गलती जड़ की थी और सुधार को भी जड़ में ही होना है। चलती सभ्यता के लहलहाते पत्ते अब भी चाहे ऊपर से मोहक लगते हों पर तना गल चुका है और सभ्यता का सारा महावृक्ष ढहने वाला है। कारण—जड़ें उसकी मानव-सत्य की गहराई में से अपनी खुराक नहीं खींच रही है। वे उससे अलग और विच्छिन्न हैं।

आवश्यक है कि सामाजिक और सार्वजनिक—जैसे कि वैयक्तिक जीवन को मूल में उस सत्य से जोड़ा जाय जो सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। जो यहां वहां बदलता नहीं हो। जो मानवता को एक मानता हो और उनके सामुदायिक या श्रेणी-बद्ध विग्रह को अनिवार्य धर्मरूप मानता हो। जो इस तरह मानव के परस्पर संघर्ष की जगह उसके आपसी सहयोग को आधार देता हो, जो स्पर्धा की जगह स्नेह का संचार करता हो।

मेरा मानना है कि मनुष्य की अन्तरात्मा में यह आलोड़न गम्भीरता से चल रहा है। यह भी मेरा विश्वास है कि इसमें से एक ऐसी उत्का-

न्ति को जन्म मिलेगा जिसके आगे इतिहास में प्रसिद्ध होनेवाली राजनै- तिक क्रान्तियां निस्सार जान पड़ेंगी। राष्ट्रीय सरकारों की [illegible] का महत्व उसके सामने फीका रह जायेगा।

हर देश के गंभीर विचारशील लोगों में इस [illegible] उपज रहे हैं और कोई नहीं कहसकता है कि कब वे जुटकर, एक होकर, एक नया प्रकाश जगत् को देने में समर्थ हो जायेंगे।

अणुव्रत आन्दोलन भी मुझे उस दिशा का एक प्रयत्न प्रतीत होता है। उसके प्रतिष्ठाता और सचालक में तेज है और वेग है। संगठन की उनमें क्षमता है। न्यस्त स्वार्थ भी उनके पास नहीं है। अनुयायियों की [illegible], सख्या उनके पीछे है। इस तरह यह आन्दोलन [illegible] बंधाता है। अनुयायियों का समुदाय अपने में जितना शुद्ध और [illegible]- शील होगा उतना ही आन्दोलन चमकेगा। [illegible] समूह की विसर्जनशीलता है। राजनैतिक दल शक्ति के प्रतीक [illegible] नहीं होते कि उनमें विसर्जनशीलता का यह गुण नहीं होता। उनमें [illegible] होता है और आहरण। वे देने से ज्यादा खींचते हैं। [illegible] ही विसर्जनशील समूह को लेकर चमके थे। पीछे [illegible] जो धर्म को प्रकाशित उतना न करते थे जितना [illegible] थे। विसर्जन की प्रेरणा धार्मिकता का लक्षण है। उसके अभाव में [illegible] की जगह निर्बलता के प्रतीक हो जाते थे।

अणुव्रत आन्दोलन मानव-मंदिर में हमारी आस्था को पुष्ट करने वाला है। और उसकी गतिविधि के सम्बन्ध में मैं सदा [illegible] और जिज्ञासु रहा हूं। उसमें निर्माण की सम्भावनाएं हैं।

अणुव्रत और अणुव्रती संघ

—आचार्य श्री तुलसी

व्यक्ति का अस्तित्व अपना है, समाज का अस्तित्व व्यक्ति है। व्यक्ति वस्तुवाद है और समाज सुविधावाद। व्यक्तिकी आवश्यकता अपने आप पूरी नहीं हुई तब सापेक्ष स्थिति का उद्गम हुआ। सापेक्षताने समाजको जन्म दिया। समाजका आधार है 'परस्परोपग्रह—'एक पदार्थका दूसरे पदार्थके प्रति उपकार' का सिद्धान्त जितना वास्तविक है उतना ही व्यावहारिक है। जैन-दर्शनने विश्व-स्थिति की मौलिक समस्या—जड़-चेतन के सम्बन्ध की समस्या को सुलझाने के लिए इसका उपयोग[1] किया इस दशा में वैदिक दर्शन नें व्यवहार के क्षेत्र में इसका प्रयोग[2] किया। जैन-दर्शन के अनुसार जैसे विश्व संगठन का हेतु जीव और पुद्गल का परस्पर उपग्रह है वैसे ही वैदिक-दर्शन के अनुसार समाज संगठन का हेतु पारस्परिक सहयोग है। समाज की सहयोगी व्यवस्था और सापेक्ष स्थिति में बंधकर व्यक्ति व्यक्ति नहीं रहता, वह आदान-प्रदान का केन्द्र बिन्दु बना जाता है।

व्यक्ति व्यक्ति रहता है तब तक उसके सामने महत्त्वाकांक्षा, महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए परिग्रह या संग्रह, संग्रह के लिए शोषण या अपहरण, शोषण के लिए बौद्धिक या कायिक शक्ति का विकास, बौद्धिक और दैहिक शक्ति संग्रह के लिए विद्या की दुरभि संधि,

---

१—तत्त्वार्थाधिगम ५।२१

२—संगच्छध्वं संवदध्वं

स्पर्धा आदि-आदि समस्याएं नही होतीं। समाज में प्रत्येक [illegible] व्यक्ति ज्यों ज्यों अपनी दुर्बलता का प्रतिकार पाता है, त्यों त्यों महत्त्वाकांक्षा और स्पर्धा उसे शक्ति संग्रह के लिये प्रेरित करने लग जाती हैं। महत्त्वाकांक्षा शोषण को जन्म देती है और शोषण अव्यवस्था को। अव्यवस्था में समाज का ढांचा डांवाडोल हो जाता है तब उसकी पुनर्व्यवस्था के लिये दण्ड नीति, अनुशासन और न्याय के [illegible] हैं।

व्यक्ति जीवन में मर्यादाहीनता का प्रश्न नहीं उठता। सामाजिक जीवन में मर्यादाहीनता आती है किन्तु समाज उसे सह नहीं सकता। इसलिए समाज धर्म अहिंसा और दण्ड विधान बनाता है। समाज का प्रत्येक सदस्य उसके अनुसार चलने के लिए बाध्य होता है। समाज की व्यवस्था के लिए समाज बल या समाज मर्यादा [illegible] होती है। सफलता की कुंजी है समाज मर्यादा के पीछे रही हुई राज्य शक्ति। शक्ति से नियन्त्रित व्यक्ति उच्छृंखल नहीं हो सकता।

मनुष्य जाति का ऊर्ध्वमुखी विराट चिन्तन आगे चला। दार्शनिक चिन्तन का विकास हुआ पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का मर्म उसने समझा। इहलोक की सीमा से परे परलोक को उसने जाना। इस दशा में पहुँचकर फिर वह व्यक्तिवादी बना और इस भूमिका में [illegible] जीवन पद्धति का विकास हुआ। समाज की मर्यादा इस भूमिका में अमर्यादा बन गई। समाज जिस हिंसा को क्षम्य मानता है वह यहाँ अक्षम्य बन जाती है, समाज जिस अन्याय को न्याय मानता है वह यहाँ अन्याय बन जाता है समाज जिस भोग-विलास को वैध मानता है वह यहाँ अवैध बन जाता है। इस भूमिका में मर्यादा का क्रम और चला। उसी का नाम है व्रत, नियम, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]।

कई विचारक ऐसा मानते हैं—धर्म समाज व्यवस्था के लिए है किन्तु यह सत्य से परे है। धर्म का उद्गम [illegible] [illegible] [illegible],

आत्म शोधनकी प्रक्रियाके रूपमें उसका विकास हुआ। मोक्ष प्राप्ति आत्म-शुद्धि, या आत्म-नियमन के लिए उसका व्यवहार हुआ। मुनि चारित्र-ग्रहण के समय प्रतिज्ञा करता है कि मैं आत्म-हित के लिए पांच महाव्रतों को स्वीकार कर विहार करूंगा।[१] व्रतका साध्य है-आत्म-मुक्ति प्रासंगिक फल के रूप में समाज का नियमन भी होता है किन्तु वह धर्मका अनन्तर फल नही, ऐहिक और पारलौकिक आत्मसिद्धि के लिए धर्म करना विहित[२] नहीं है। धर्म परलोक के लिए है, यह धारणा भी सदोष है। आत्म हित की दृष्टि से वह इहलोक और परलोक दोनों में श्रेयस्कर[३] है।

भारतीय चिन्तनकी मुख्य धारा चतुर्थ पुरुषार्थ-मोक्षकी ओर वही। शब्दशास्त्र,[४] प्रमाणशास्त्र[५] का चरम उद्देश्य मोक्ष रहा, इसमें कोई आश्चर्य नही किन्तु कामशास्त्र में भी जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष बतलाया गया है।[६] उपनिषद् में प्रेयस् को बन्धन और श्रेयस् को मुक्ति माना है। प्रेयस् जीवन की अनिवार्यता है फिर भी उसमें अनासक्ति होनी चाहिये। कारण यह कि श्रेयस की ओर जो गति हे उसमें प्रेयस् बाधक न बने। जैन दृष्टि के अनुसार आत्म-मुक्तिकी प्रक्रियाके दो तत्व हैं-संवर और निर्जरा। संवर निवृत्ति, है और निर्जरा निवृत्ति संवलित प्रवृति, संवर निरोध

१- इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमण छट्ठाइं अत्तहियठियाए उवसंपज्जित्ता णं विहरमी-दशवै० ४-१३।

२- नो इह लोगट्ठयाए तवमहिठिज्जा, नो परलोगट्ठयाए तवमहिठिज्जा। - दशवै ९-४।

३ - तेहिं आराहिया दुवे लोए।—उत्तरा० ८।२०।

४- वैशेषिक दर्शन १,४, न्याय दर्शन १।१।

५ - हैमशब्दानुशासन १।१।२ लघुन्यास।

६ - स्थाविरे धर्मं मोक्षञ्च-काम शास्त्र अध्याय २।

है और निर्जरा शोधन। यह व्यक्तिकी सहज मर्यादा है। इससे यह फलित होता है कि धर्म व्यक्ति के आत्म-नियमन का साधन है। इसे समाज के आपसी सम्बधों के नियमन का साधन बताया जाता है, यह अनात्मवादी मानसकी कल्पना है।

महाव्रत और अणुव्रत

भारतीय जीवनमें व्रती जीवन का सर्वोच्च गौरवपूर्ण स्थान है। यहाँ धन, ऐश्वर्य, भोग-विलास और दान से कोई बड़ा नहीं बना। नमि राजर्षि राज्य वैभव और भोग-विलास को ठुकरा कर निर्ग्रन्थ बने। इन्द्र ने उनसे कहा—'आप दान दें, भोग करें और फिर दीक्षा लें।' राजर्षि बोले 'जो व्यक्ति प्रति मास दस लाख गायों का दान करता है उसके लिए भी संयम श्रेष्ठ है यद्यपि संयमी बनने पर वह एक गाय का भी दान नही करता[1]।'

भारतीय परम्परा में महान् वह है जो त्यागी है। यहाँ का साहित्य त्याग के आदर्शों का साहित्य है। जीवन के चरम भाग में निर्ग्रन्थ या सन्यासी बन जाना तो सहज वृत्ति है ही किन्तु जीवन के आदि[2] भाग में भी प्रव्रज्या आदेय मानी जाती रही है। त्यागपूर्ण जीवन महाव्रत की भूमिका या निर्ग्रन्थ वृत्ति है यह निरपवाद संयम मार्ग है। इसके लिए अत्यन्त विरक्ति की अपेक्षा है। जो व्यक्ति अत्यन्त विरक्ति और अत्यन्त अविरक्ति के बीच की स्थिति में होता है वह अणुव्रती बनता है। आनन्द गाथापति भगवान् महावीर से प्रार्थना करता है—'भगवन्! आपके पास बहुत सारे व्यक्ति निर्ग्रन्थ बनते हैं

१—जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ, अदिन्तस्स वि किंचण॥

—उत्तरा० ९।४०।

२—यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।

किन्तु मुझमें ऐसी शक्ति नहीं कि मैं निर्ग्रन्थ बनूं इसलिए मैं आपके पास पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत—द्वादश व्रतात्मक गृही धर्म स्वीकार करूंगा[1] ।' यहाँ शक्ति का अर्थ है विरक्ति । संसार के प्रति, पदार्थों के प्रति, भोग-उपभोग के प्रति, विरक्ति का प्राबल्य होता है वह निर्ग्रन्थ बन सकता है । अहिंसा और अपरिग्रह का महान् व्रत उसका जीवन धर्म बन जाता है । यह वस्तु सबके लिये सम्भव नहीं । व्रत का अणुरूप मध्यम मार्ग है । अव्रती जीवन, शोषण और हिंसा का प्रतीक होता है और महाव्रती जीवन दुःशक्य । इस दशा में अणुव्रती जीवन का विकल्प ही शेष रहता है ।

अणुव्रत का विधान व्रतों का सीमाकरण या संयम और असंयम, सत्य और असत्य, अहिंसा और हिंसा, अपरिग्रह और परिग्रह का मिश्रण नहीं किन्तु जीवन की न्यूनतम मर्यादा का स्वीकरण है ।

अणुव्रत विभाग

अणुव्रत पांच हैं:—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य या स्वदार संतोष और अपरिग्रह या इच्छा परिमाण ।

अहिंसा—राग द्वेषात्मक प्रवृत्तियों का निरोध या आत्मा की राग द्वेष रहित प्रवृत्ति । पहला निषेधात्मक पक्ष है और दूसरा विधेयात्मक, निषेधात्मक भावी शुद्धि के लिए है और भूत शुद्धि के लिए विधेयात्मक । वर्तमान शुद्धि दोनों में है ।

अनिवार्य हिंसा या अर्थ हिंसा जीवन की अशक्यता का पक्ष है । अनर्थ हिंसा प्रमादवश होती है । मनुष्य जितनी कायिक हिंसा नहीं

१—नो खलु अहं तहा सचाएमि मुण्डे जाव पव्वइत्तए । अहण्णं देवाणुप्पियाणं अन्तिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालस विहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि—उपासक दशांग ।१।

करता [illegible] मानसिक [illegible] करता है । [illegible], [illegible] [illegible] शत्रु-मित्र, आदि अनेक कल्पना के धागे में [illegible] [illegible] उलझता है कि वह मानसिक हिंसा से [illegible] [illegible] नहीं पाने [illegible] । अहिंसा अणुव्रत का तात्पर्य है [illegible] हिंसा [illegible] [illegible] [illegible] प्रमाद या अज्ञानजनित हिंसा से बचना ।

सत्य—सत्य अहिंसा का वचनात्मक या [illegible] [illegible] है । हास्य कुतूहलवश अयथार्थ बोलना भी असत्य है । [illegible] [illegible] सूक्ष्म रूप है । मनुष्य इससे न बच [illegible] तो [illegible] [illegible] [illegible] अवश्य बचना चाहिए । जिस वाणी या [illegible] के पीछे [illegible] विचारों का जाल बिछा रहता है वह [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] ऐसे असत्य का त्याग आवश्यक होता है ।

अचौर्य—अचौर्य अहिंसात्मक अधिकारों की [illegible] है । पर-[illegible] हरण चौर्य है, हिंसा का अधिकार है । मनुष्य समाज के [illegible] [illegible] अधिकांशतया स्तेय वृत्ति के उपजीवी हैं । एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति [illegible] शोषण करता है, अधिकार में [illegible] है, दास [illegible] है, [illegible] [illegible] है, स्वत्व छीनना है यह सब स्तेय वृत्ति है । सूक्ष्म दृष्टि से [illegible] [illegible] एक तिनका भी उसकी अनुमति [illegible] बिना [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] अणुव्रत की मर्यादा है—जीवन के आवश्यक [illegible] [illegible] [illegible] न करना ।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य अहिंसा का [illegible] [illegible] है । [illegible] ब्रह्मचारी न बन [illegible] की स्थिति में [illegible] [illegible] [illegible] अब्रह्मचर्य का परित्याग करना और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करना चतुर्थ अणुव्रत है ।

अपरिग्रह—अपरिग्रह अहिंसा का [illegible] [illegible] [illegible] है । गृहस्थ जीवन अपरिग्रही बन नहीं [illegible] । [illegible] [illegible]

अणुव्रत का अर्थ है— इच्छा का परिमाण। परिग्रह का नियंत्रण सामाजिक नियम से हो सकता है। किन्तु उससे इच्छा का नियंत्रण नहीं होता। व्रत यह है, इच्छा के नियन्त्रण के द्वारा परिग्रह का नियंत्रण हो।

अणुव्रत के अनुकूल वातावरण

व्रतों की उपादेयता में कोई दो मत नही। मत द्वैध है व्रतो की उपयोगिता में। आत्म विरक्ति से स्व नियमन करनेवाले विरले होते है। अधिकांश व्यक्ति तब तक हिंसा और परिग्रह को नही छोड़ते जब तक वे वैसा करने के लिए बाध्य नहीं किये जाते। व्रत हृदय परिवर्तन का फल है। जन साधारण का हृदय उपदेशात्मक पद्धति से परिवर्तित नही होता इसलिए समाज की दुर्व्यवस्था को बदलने के लिए व्रतों की कोई उपयोगिता नही। लगभग स्थिति ऐसी है। क्यो है यह चिन्तनीय है।

इस चिन्तन के परिणाम स्वरूप दो तीन बातें हमारे सामने आती है। पहली यह व्रतो की रचना समाज की आर्थिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए नही। उनकी रचना हुई है उसकी आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए। आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटते ही आर्थिक दुर्व्यवस्था मिटती है किंतु व्रताचरण का वह गौण फल है। आत्मिक दुर्व्यवस्था को परिसमाप्ति का एक मात्र साधन हृदय परिवर्तन है। व्यक्ति का हृदय बदलता है उससे आत्मिक दुर्व्यवस्था का अन्त होता है। उससे समाज की दुर्व्यवस्था मिटती है।

कानून के पीछे ऐसी स्थिति है कि मनुष्य उसका उल्लंघन नही कर सकता और यदि करता है तो उसे उसका फल भुगतना पड़ता है। व्रतो के पीछे ऐसा वातावरण नहीं है। उनका आचरण इच्छा प्रेरित है।

दूसरी बात मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियां राग द्वेषात्मक होती है।

इनके फलस्वरूप व्यक्ति में अप्रिय वस्तु स्थिति के प्रति असहिष्णु वृत्ति, अपने को सर्वोच्च मानने की वृत्ति, दूसरों को ठगने की वृत्ति और संग्रह की वृत्ति, ये चार मुख्य दुर्बलताएँ[1] होती हैं। समाज का वातावरण और आसपास की स्थितियाँ इनके अनुकूल होती हैं तब इन्हें उत्तेजना मिलती है और इनका कार्य तीव्र हो चलता है। बाहरी साधन की प्रतिकूल दशा में ये दुर्बलताएँ दबी रहती हैं। समाज की अपेक्षा इतनी ही है कि ये दबी रहें। अणुव्रत की यह भूमिका है। उसकी अपेक्षा है इनका मूलोच्छेद हो। जिनकी आत्मा उद्बुद्ध हो जाती है वे पारिपार्श्विक स्थितियों पर विजय पाकर इनका मूलोच्छेद कर डालते हैं। किन्तु सर्व साधारण की स्थिति ऐसी नहीं होती। समाज की भोगवादी मनोवृत्ति इन्हें उभारती है। यही कारण है कि सर्व साधारण को व्रत पालन की सहज प्रेरणा नहीं मिलती। तीसरी बात व्रत लेने वाले व्रतों के परिधर की सुरक्षा करते हैं किन्तु उनकी आत्मा को नहीं छूते। व्रतों को अपने जीवन में लाते हैं किन्तु जीवन को उनके आदर्शों पर नहीं ढालते। इस पर सूक्ष्म विचार करना होगा कि अणुव्रती जीवन का आदर्श क्या और कैसा होना चाहिए।

अणुव्रती जीवन का आदर्श

अणुव्रती जीवन का आदर्श है परिग्रह और आरम्भ [illegible]। भोगवाद से महारम्भ और महापरिग्रह का जन्म होता है। अणुव्रती को महेच्छ और महारम्भी नहीं होना चाहिए। महारम्भ का मूल महा इच्छा है। इच्छा सबल होती है तब [illegible] है। आरम्भ आवश्यकता से [illegible] नहीं बनता। उनकी गति इच्छा के अधीन हो जाती है [illegible]

१—कोह च माण च तहेव माय, लोभ चउत्थ अज्झत्थ दोसा।
—सूयगडांग [illegible]

वनता है। पूंजी और उद्योग का केन्द्रीकरण आवश्यकता की पूर्ति के लिये नहीं, किन्तु इच्छा की पूर्ति के लिए होता है। अणुव्रती आदर्श के अनुसार इनका अपने आप विकेन्द्रीकरण हो जाता है। अणुव्रती दूसरे के श्रम और श्रम फल को न छीने तभी वह अहिंसा और अशोषण के आदर्श पर चल सकता है। दूसरे के श्रम को छीनने की वृत्ति टूटती है तव अपने आप उसका जीवन आत्म निर्भर, और श्रमपूर्ण वन जाता जाता है। जो व्यक्ति अपने श्रम पर निर्भर रहता है वह कभी महा-रम्भी और महापरिग्रही नहीं वनता। महारम्भ महापरिग्रह की परि-भाषा समझने में भूल हो रही है। उस पर फिर विचार करने की आवश्यकता है। सामान्यतया थोड़ी वहुत प्रत्यक्ष हिंसा के कार्य को लोग महारम्भ मान लेते है। परोक्ष हिंसा की ओर ध्यान नही देते। खेती में जीव मरते है इसलिए वह आरम्भ का धन्धा लगता है किन्तु कूट तोल माप में प्रत्यक्ष हिंसा नही दीखती इसलिए वह महारम्भ नही लगता। महारम्भ और महापरिग्रह नरक के कारण हैं[1]। कारण साफ है उनसे आर्त रौद्र ध्यान वढ़ता है। उससे आत्म गुण की घात होती है। आत्मा का अधःपतन होता है। आचार्य जिनसेन ने व्याज लेकर आजीविका करने को आर्त्त ध्यान का चिन्ह[2] माना है। विपय संरक्षण रौद्र ध्यान है। इसका अर्थ है विषय और धन की प्राप्ति और संरक्षण के लिए चिन्ता[3] करना। धार्मिक समाज में भी मानसिक हिंसा का प्रावल्य इसलिए हो गया कि उसमें प्रत्यक्ष हिंसा नही दीखती।

१—महारभयाए महापरिग्गहियाए, पचंदिय वहेणं कुणिहामरेणं।—
　　　　　　　　　　　　　　　　　　भगवती श० ८-३-९

२—मूर्च्छा कौशील्य कैनाश्य कौसीद्यान्यति गृघ्नुता।
　　भयोद्वेगानुशोकाश्च लिङ्गान्यार्ते स्मृतानि वै॥ ४०॥
　　　　　　　　　　　　　　　　　　—महापुराण २१ पर्व

३—भवेत् संरक्षणानन्द: स्मृतिरर्थार्जनादिषु। महापुराण २१।५१

यदि प्रत्यक्ष हिंसा की भांति परोक्ष हिंसा से भी घृणा होती तो [illegible] इतना असत्य निष्ठ और अप्रामाणिक नहीं बनता।

वृत्तियो की अप्रामाणिकता का हेतु महापरिग्रह है। महापरिग्रह [illegible] के लिए महा सावद्य उपाय प्रयोजनीय होते है। अणुव्रती अल्पपरिग्रही होता है। इसलिए उसके जीवन उपाय अल्प सावद्य होते हैं। इसीलिये उसे अल्प सावद्य कर्मार्य कहा जाता है। [illegible] सावद्य [illegible] अप्रामाणिक बनने की स्थिति ही नहीं आती। अणुव्रती [illegible] जीवन [illegible] सग्रहोन्मुख नहीं होती। [illegible] धर्म [illegible] है कि जीवन वृत्ति सुलभ [illegible] चले। धन के द्वारा जीवि[illegible] निर्वाह नहीं होता है तब चोरी आदि दुष्प्रवृत्तिया [illegible] परिस्थितिया मनुष्य को बुरा बनने की प्रेरणा देती है [illegible] उन्हें सरल बनाने की [illegible] है। [illegible] की अनियन्त्रित दशा अधिक [illegible] स्थिति है। अणुव्रती [illegible] अधिक ध्यान देने की अपेक्षा होती है।

सक्षेप में अणुव्रती जीवन का आदर्श है—इच्छा परिमाण, [illegible] परिमाण। इस आदर्श को निभाने के लिये अणुव्रती को [illegible] आदर्शों पर प्रहार करना होगा। धन को [illegible] मानने की [illegible], [illegible] के आधार पर ऊच नीच की [illegible], [illegible] कल्पना, को तोड़ना होगा। जीवन [illegible] होगा।

१—अल्पसावद्य कर्मार्य. [illegible], [illegible]
—[illegible]

२—[illegible]पायेन [illegible]
[illegible]

जीवन के मूल्य न बदलें, राजसी धारा में अन्तर न आये, तबतक अणुव्रत जीवन प्रेरक नहीं बनते। अणुव्रती को सादगी के लिए आडम्बरों का और नम्रता के लिये मिथ्याभिमान का बलिदान करना होगा।

व्यक्तिवादी मनोवृत्ति

भारतीय जीवन में व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का प्राबल्य है। अध्यात्मवादी धारा में व्यक्ति का विशेषत्व बढ़ता है। संयम के क्षेत्र में यह आवश्यक है 'समाज संयमी नहीं बनता तब मैं 'क्यों बनूं' यह मनःस्थिति संयम के स्वीकरण में बाधक बनती है। समाज संयमी न बने फिर भी व्यक्ति को संयमी बनना चाहिए। संयम समाज का कानून नहीं, व्यक्ति की स्व-मर्यादा है।

सामाजिक रीतिक्रम समाज नहीं करता वहां अकेला व्यक्ति अपना विशेषत्व दिखाता है, यह स्थिति समाज के लिए घातक बनती है। व्यक्ति की उच्छृंखलता समाज की मनोवृत्ति को उभाड़ने का निमित्त बनती है।

अध्यात्म की धारा यह नहीं है कि व्यक्ति असंयम में व्यक्तिवादी रहे। उसकी अपेक्षा है, व्यक्ति संयम साधना के लिए व्यक्तिवादी रहे। यह व्यक्तिवाद, जो संयम से निखरता है समाज या राष्ट्र के लिए घातक नहीं बनता।

धर्म समाज को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण देता है, यह कहनेवाले उसकी सीमा को दृष्टि से ओझल किये देते हैं। सही अर्थ में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण बनने का प्रधान कारण सामन्तशाही है। भोगवादी मनोवृत्ति, संग्रहवादी मनोवृत्ति, व्यक्तिवादी मनोवृत्ति और परिवारवादी मनोवृत्ति, ये

सामन्तशाही के निश्चित परिणाम हैं। भारत धर्म का मूल उद्गम और रहा है, इस दृष्टि से भले ही वह धर्म प्रधान कहलाये। नैतिकता की दृष्टि से धर्म प्रधान कहलाने की क्षमता कम से कम आज तो उसमें नहीं है। सौभाग्य से व्रतों की दृष्टि अब भी सुरक्षित है। यदि इनका जीवन में प्रयोग बढ़ा, व्यक्तिवादी मनोवृत्ति भोग, लालन और संग्रह पोषण से हटकर संयम की ओर मुड़ी तो अवश्य ही अनैतिकता की बाढ़ रुकेगी।

अणुव्रती संघ

अणुव्रती स्वयं सिद्ध शक्ति है। भोगवाद की एकछत्र शक्ति के प्रतिरोध के लिए वही सफल साधन है। अपेक्षा यह है वह शक्ति संगठित बने। असंयुक्त दशा में दो नौ के अंकों को जो 'अठारह' का बल मिलता है वह संयुक्त दशा में 'निन्यानवे' का हो जाता है। संयुक्त स्थिति का लाभ उठाने के लिए 'अणुव्रती संघ' की स्थापना कर इस शक्ति को संगठित करने का प्रयत्न किया गया है।

स्थापना

अणुव्रती संघ की स्थापना विक्रम सं० २००५ फाल्गुन शुक्ला २ के दिन सरदार शहर (राजस्थान) में हुई। पहले दिन लगभग ८० अणुव्रती बने। आज की भाषा में प्रगति व विकास का तात्पर्य पदार्थ विस्तार है। जड़वादी युग के पदार्थ परक विकास के सामने चैतन्य विकास का जो प्रतिरोध अपेक्षित था उस दिशा में यह उपक्रम सफल प्रमाणित हुआ। अभी यह शैशव में है। इसके भविष्य में बड़ी सम्भावनायें हैं।

ह्रास या विकास

मनुष्य की बाहरी स्थितियां विकसित हुई हैं यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह है कि उसकी आन्तरिक वृत्तियां मन्द हुई हैं।

तंदुल वयालिय में अवसर्पिणी युग के मनुष्य की अन्तर वृत्ति और व्यव-हार के अवसपर्ण का चित्र खीचते हुए लिखा है– मनुष्य की क्रोध, मान, माया और लोभ की वृत्तियां क्रमशः बढ़ेंगी। तोल माप के अप्रामाणिक उपकरण बढ़ेंगे, तुला का वैषम्म, मान का वैषम्य, राजकुल का वैषम्य वर्षा का वैषम्य इस प्रकार वैषम्य बढ़ेगा, धान्य बलहीन हो जायगा, उससे मनुष्यों की आयु कम होगी।

ज्यों ज्यों आन्तरिक वृत्तियो का विकार बढ़ता है त्यों त्यो स्थि-तियां जटिल बनती है। रोग का मूल अन्तर का क्षय है, मनुष्य बाहरी विकास से चुंधिया गया है। वह अभी इस प्रश्नवाचक चिन्ह का उत्तर नही पा सका है कि वर्तमान युग विकास का युग है या ह्रास का ?

उद्देश्य

अणुव्रती संघ की स्थापना का उद्देश्य है जीवन के मूल्यों को बद-लना। यह कार्य सरल नही है। एक प्रकाश की रेखा अवश्य है। युद्ध और शीत युद्ध के थपेड़ो और अस्त्र शस्त्रों की स्पर्धा से मनुष्य जर्जर बन गया। अब उसके सामने आन्तरिक वृत्तियो को पवित्र बनाने के सिवाय दूसरा विकल्प नही रहा। अब दीख रहा है, आन्तरिक वृत्तियां यो ही चली तो प्रलय दूर नही है। इस आन्दोलन की ये अपेक्षायें है–– मनुष्य शस्त्र निष्ठ न बन कर अहिंसा निष्ठ बने। भौतिक विकास को मुल्य न मानकर आध्यात्मिक चेतना को जगाये। भोगी न बन कर व्रती बने। स्टैण्डर्ड ऑफ लीविंग (Standard of living) को गौण मानकर स्टैन्डर्ड ऑफ लाइफ (Standard of life) को ऊंचा उठाये। एक शब्द में आन्तरिक साम्य को शक्तिशाली बनाकर वैषम्य का अन्त करे।

प्रगति की ओर

अणुव्रत आंदोलन क्रमशः प्रगति की ओर बढ़ रहा है। [illegible] प्रारम्भिक समय में लगभग २२०० अणुव्रती बने। [illegible] से यह कोई ज्यादा प्रगति नहीं है। किन्तु भोगवाद के विरुद्ध [illegible] ध्वनि का बल बढ़ रहा है, जनता का दृष्टिकोण बदल रहा है, नैतिक क्रान्ति की भूमिका जो बन रही है, वही [illegible] है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस आंदोलन ने वातावरण को प्रभावित किया है।

समन्वय की दिशा

अणुव्रती संघ जाति, वर्ण, देश के भेदों को गौण मानता है, यही नहीं, धर्म भेद के प्रति भी इसका दृष्टि-बिन्दु [illegible] और [illegible] है। किसी भी धर्म को मानने वाला इनका सदस्य बन सकता है, [illegible] नहीं इसकी रचना के आधारभूत तत्त्व भी सर्वसाधारण हैं। अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये सर्व धर्म सामान्य [illegible] हैं। इन्हें कोई अस्वीकार नहीं करता। [illegible] योग में इन्हें 'यम' [illegible] है। पातञ्जलि ने यम[1] को उसी अर्थ में रखा है जिस अर्थ में [illegible]

१—अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥३०॥
जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

व्याख्या

उक्त अहिंसा आदि का अनुष्ठान जब सार्वभौम [illegible], सब जगह और सब समय समान भाव से किया जाता है तब वे [illegible] हो जाते हैं। जैसे किसी ने नियम लिया कि [illegible] जीवों की हिंसा नहीं करूंगा तो यह जाति [illegible] अहिंसा है। इसी तरह कोई नियम ले कि मैं तीर्थों में हिंसा नहीं [illegible] अविच्छिन्न अहिंसा है। कोई यह नियम करे कि मैं एकादशी, [illegible]

सूत्र अणुव्रत का प्रयोग करते हैं। महाव्रत शब्द दोनों की भाषा में एक है। पातञ्जलि ने जाति देश, काल समयानवच्छिन्न नियमों को महाव्रत कहा है। जैन भाषा में आगाररहित पूर्ण त्याग महाव्रत कहलाते हैं। दोनों का तात्पर्य सर्वथा एक है। महात्मा बुद्ध की वाणी में ये पाँच शील हैं। श्रमण अणु और स्थूल दोनों प्रकार के पापों को वर्जता है। गृहस्थ स्थूल पापों[1] को वर्जता है तब उसका व्रत अपने आप अणुव्रत हो जाता है। इस्लाम और ईसाई धर्म में अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह की मर्यादा और शिक्षा है। तात्पर्य एक है कि प्रत्येक धर्म मुमुक्षु के लिये जैसे सन्यास का विधान करता है, वैसे गृहस्थ के लिए अणुव्रत धर्म का।

अणुव्रत आंदोलन में अणुव्रत शब्द जैन सूत्रों से लिया गया है किन्तु भावना में कुछ अन्तर है। जैन परम्परा की भावना के अनुसार अणुव्रती वह बन सकता है जो सम्यग् दृष्टि हो। इसीलिये अणुव्रतों को सम्यक्त्व मूलक कहा[2] गया है। इस संघ में यह भावना नहीं है। जैन दृष्टि को स्वीकार करने वाला ही अणुव्रती बने ऐसा नहीं है।

और अमावस्या को हिंसा नहीं करूंगा तो यह कालावच्छिन्न अहिंसा है। कोई नियम करे कि मैं विवाह के अवसर के सिवाय अन्य किसी निमित्त से हिंसा नहीं करूँगा तो यह समयानवच्छिन्न (निमित्त से सम्बन्धित) अहिंसा है। इसी प्रकार सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अप-ग्रह के भी भेद समझ लेने चाहिये। ऐसे यम व्रत तो हैं परन्तु सार्वभौम न होने के कारण महाव्रत नहीं हैं। उपर्युक्त प्रकार का प्रतिबंध न लग कर जब सभी प्राणियों के साथ सब देशों में सदा सर्वदा इनका पालन किया जाय, किसी भी निमित्त से इनमें शिथिलता आने का अवकाश न दिया जाय तब ये सार्वभौम होने पर 'महाव्रत' कहलाते हैं।

(पातंजल योग दर्शन, साधना पद २)

१–धम्मपद १८।१० २–उपासक दशांग

इसके सम्यक् दर्शन की परिभाषा है--'अहिंसा निष्ठ दृष्टि'। अणुव्रती वह बन सकता है जिसकी अहिंसा में निष्ठा हो। यह आन्दोलन सब धर्मों को अहिंसा में केन्द्रित करता है। वास्तविक धर्म अहिंसा ही है। सत्य आदि शेष व्रत उसी के पोषक या सहायक[1] हैं। अहिंसा निष्ठ व्यक्ति आत्म-शुद्धि के लिए ही व्रतों को स्वीकार करेगा। भौतिक अभिसिद्धि के लिए नहीं। व्रतों का अपना स्वतन्त्र मूल्य है। भौतिक सिद्धि के लिए उनका प्रयोग करना उनकी उच्चता को कम करना है। अर्थव्यवस्था असंयम से सुधर सकती है वह क्या कौन उसके सुधार के लिए व्रत का कठोर मार्ग अपनायेगा। धर्म के लिए उस को अपनानेवाला अर्थनिष्ठ हो सकता है धर्मनिष्ठ या अहिंसा निष्ठ नहीं। इसलिए व्रती बनने का उद्देश्य मात्र आत्म-शुद्धि होना चाहिए। अन्तर की शुद्धि बाहरी वातावरण को शुद्ध बनायेगी। उससे आर्थिक और भौतिक व्यवस्था अपने आप सुधरेगी इसमें कोई सन्देह नहीं। अणुव्रती संघ केवल जीवन शुद्धि की सामान्य भूमिका का उपक्रम ही नहीं, वह धार्मिक मतभेदों के प्रति सहिष्णु भी बनाता है। यह अहिंसावादियों का सार्वजनिक मंच है। इसके सहारे अहिंसा का उच्च संगम किया जा सकता है। सब धर्मों का विचार भेद मिटे यह दुष्कर है किन्तु उनका विरोध मिटे यह अपेक्षित है और सम्भव है। अणुव्रत आन्दोलन इसका माध्यम है। दूसरे धर्म और व्यवहार की खाई को पाटकर उनका समन्वय करना भी इसका उद्देश्य है। तीसरी दृष्टि यह है कि धर्म जो बुद्धि विचार और भाषा का धर्म बन रहा है वह जीवन का धर्म बने।

व्यावहारिक जीवन

वर्तमान की गुरुतर समस्या आर्थिक है ऐसा माना जाता है। अर्थ-शास्त्री इसका समाधान बहुत उत्पादन मानते हैं। [illegible]

१—ज्ञानार्णव—सत्य महाव्रत २—योगशास्त्र ३—[illegible]

हल हुआ-सा लगता भी है किन्तु महा लोभ है तब तक यह समस्या सुलझ जायगी ऐसा नहीं लगता। इसका निरपवाद समाधान संयम है। व्रती जीवन जहां आत्म शान्ति पैदा करता है वहां आर्थिक समस्या का भी समाधान देता है। व्रती जीवन वर्तमान युग की सर्वोच्च आवश्यकता है। इसके अनुकूल वातावरण बनाना सबका कर्त्तव्य है। व्रतों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी तब मुख्य रूप में शुद्धि बढ़ेगी और व्यवहार में श्रम और स्वावलम्बन की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

'विदेशी वस्त्र नहीं पहनूंगा'—यह इच्छा का नियमन है, यह शुद्धि है। विदेशी वस्त्र के निमित्त होने वाली हिंसा से मुक्ति मिलती है। व्यावहारिक लाभ स्वदेशी उद्योग बढ़ता है। 'स्वग्राम में बने वस्त्र के अतिरिक्त वस्त्र नहीं पहनूंगा' यह इच्छा का और अधिक नियमन है। ग्रामोद्योग को अपने आप प्रोत्साहन मिल जाता है। 'स्वयं निर्मित वस्त्र के सिवाय अन्य वस्त्र नहीं पहनूंगा'—इसमें इच्छा और अधिक सीमित हो जाती है। आत्मनिर्भरता अपने आप बढ़ती है। श्रम निष्ठा के बाद भी व्रत निष्ठा शेष रहती है किन्तु व्रत निष्ठा में श्रम निष्ठा अपने आप फलित हो जाती है।

धर्म और कर्म का समन्वय—अणुव्रत

—श्री [illegible]
([illegible])

संसार की बहुत सी समस्यायें धर्म और कर्म को [illegible] से पैदा हुई है। आज हम देखते है कि मंदिरो और मस्जिदो में [illegible] भीड़ भाड़ रहती है परन्तु हमारे सामूहिक जीवन पर [illegible] नही पड़ता। पूजा करलो, भगवान से अपने पापो [illegible] करलो परन्तु मन्दिर से निकल कर यह [illegible] बात तो भगवान के साथ है और दुनियां की बात [illegible] भूल के कारण धर्म बदनाम हो रहा है, [illegible] सारे जीवन के साथ है। भगवान मन्दिर में भी [illegible] भी, बस इतनी सी बात है कि समझने और जीवन में [illegible] की आवश्यकता है।

अणुव्रत आन्दोलन [illegible] हमें बार बार यह याद दिलाता है कि [illegible] है। मै मानता हूं कि इसके नियम कठिन है परन्तु [illegible] बातें होती ही है। यदि एक साधारण सी [illegible] ने में भी दर्द होता है फिर जब अन्दर [illegible] में तो कठिनाई अवश्य ही होगी, परन्तु ऐसे वीर भी हमारे देश [illegible] इस वेदना को सह जाते है। [illegible] बेईमानी, [illegible] मार्केटिंग [illegible] कैसे बचें ? इसका सीधा सा उत्तर यह है कि [illegible]

द्वारा मनुष्य में आती है। धर्म के बिना धर्म नहीं हो सकता और इसी प्रकार धर्म के बिना कर्म नहीं हो सकता। कर्म का मूलाधार धर्म है और धर्म का द्योतक कर्म।

यह बात और समझ लेने की है कि आरम्भ में जितनी कठिनाई होती है उतनी अभ्यस्त होने के पश्चात् नहीं रहती। प्रकृति का यह साधारण नियम है कि अभ्यास के साथ साथ सहनशीलता बढ़ती जाती है। इसलिए पहली मंजिल पर जो कठिनाइयाँ बड़ी और गंभीर प्रतीत होती हैं वे आगे चलकर साधारण रह जाती हैं। यह बात दूर तक पहुँचती है। प्रश्न यह उठता है कि सुख और आनन्द है कहाँ? यदि वह बाह्य वस्तुओं में है तब तो किसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओं का प्राप्त कर लेना ही मनुष्य का ध्येय हो सकता है, परन्तु यदि इनका स्थान मनुष्य के हृदय में है तो फिर बाह्य वस्तुओं के पीछे दौड़ना और येन केन प्रकारेण उन्हें प्राप्त करने का साहस करना जीवन का लक्ष्य नहीं रह जाता। अणुव्रत आन्दोलन मनुष्य को जीवन का सच्चा लक्ष्य बताता है। यदि हम अपनी आकांक्षायें सीमित रखें, तो हमारा जीवन नियमबद्ध हो सकता है और हम "मा गृध्वः कस्यचिद्धनम्" के पुनीत आदर्श पर चल सकते हैं और अपनी वासनाओं को खुली छूट दे दी जाय तो फिर हमें दूसरों के अधिकार पर अवश्य छापा मारना पड़ेगा।

अपनी वासनायें घटाओ, जीवन को नियमबद्ध बनाओ, दूसरों के अधिकारों का विचार रखो, इन बातों में अणुव्रत आन्दोलन के मूल सिद्धान्त आ जाते हैं। साम्यवाद जो कुछ मार काट के द्वारा अथवा तानाशाही राज्य के द्वारा करना चाहता है. अणुव्रत आन्दोलन उस कार्य की पूर्ति मनुष्य की स्वेच्छा से चाहता है। साम्यवाद इच्छाओं को बढ़ाने में देश या समाज की उन्नति मानता है, यहाँ हमारी सभ्यता से उसका टकराव स्पष्ट हो जाता है। वे लोग बड़ी भूल करते हैं जो साम्यवाद

के सिद्धान्तों को तो देखते हैं परन्तु साधनों को नहीं देखते। साधनों को सिद्धान्तों से पृथक् नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि [illegible] आन्दोलन में साधनों पर भी उतना ही बल दिया गया है जितना कि सिद्धान्तों पर।

आदर्श समाज की स्थापना आत्म-संयम के द्वारा ही हो सकती है। अणुव्रत में इसी का संदेश है। इसकी जड़ें हमारी [illegible] में हैं। जो काम राजनीतिक दलों से नहीं हो सकता वह [illegible] और 'अणुव्रत' जैसे आन्दोलनों से हो सकता है। [illegible] पर चलने वाले वर्तमान व्यवस्था में तो थोड़ी [illegible] हो सकती है परन्तु वातावरण ज्यों ज्यों स्वच्छ होता जावेगा [illegible] की कठिनाइयाँ कम होती जावेंगी। भविष्य [illegible] — मेरा निश्चय है। मैं मानता हूँ कि धर्म और [illegible] बन गई है वह दूर हो जायगी और एक दिन [illegible] कार्य रूप में परिणत करेगी कि जो धर्म [illegible]। [illegible] साम्यवाद ने जिस भूल से किया है वह उसकी [illegible] है। अणुव्रत आन्दोलन जैसा आन्दोलन इस भूल का [illegible] ही नहीं, वरन् वह उसे दूर भी कर सकता है।

जीवन परिवर्तन का महान् साधन—अणुव्रत आन्दोलन

— श्री हरिभाऊ उपाध्याय
(मुख्य मंत्री अजमेर राज्य)

यह युग राजनैतिक जागृति और आर्थिक तथा सामाजिक समानता का युग है। जनतंत्र की भावना ज्यों ज्यों वढती और फ़ैलती जारही है त्यो त्यों राजतंत्र के युग के मूल्य वदलते जा रहे है और सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में अंतर पड़ता जा रहा है। पहले जहां जीवन के प्रायः प्रत्येक भाग में वर्गीकरण पर जोर दिया जाता था और उसके आधार पर समाज-रचना की गई थी वहां अव वर्ग और भेद-विहीनता पर जोर दिया जाता है और योग्यता और उंच-नीचता पर नही वल्कि समता के आधार पर समाज-रचना की ओर प्रवृति वढ रही है। पहले वस्तु थोडे लोगो तक ही सीमित रहती थी तो उसका गुण और श्रेष्ठता पराकाष्ठा पर पहुंच जाती थी। जव वहुजव समाज में उसके विस्तार की ओर प्रवृत्ति होती है तो गुण योग्यता और श्रेष्ठता की ओर से ध्यान हट जाता है। ओर विस्तार की तरफ ध्यान चला जाता है। इस समय हमारे देश में ऐसा ही हो रहा है। वहुजन समाज को सुख, सुविधा पहुंचाने की धुन और सामाजिक एवं आर्थिक समता की ओर तीव्र गति से प्रयाण करने के कारण, व्यक्तिगत तथा सामाजिक चरित्र की ओर कम ध्यान जा रहा है और हम देखते हैं कि इस सदी में हमारे देश और समाज का चरित्र-स्तर काफी नीचा हो गया है। इसको ओर जिन

देश और धर्म के नेताओ का ध्यान है, उनमे आचार्य तुलसी का भी ऊंचा नम्बर है। वे एक सम्प्रदाय के आचार्य हैं किन्तु उनका दृष्टिबिन्दु विशाल और सहानुभूति व्यापक है जो कि एक अहिंसा प्रेमी के लिये सर्वथा योग्य है। अणुव्रती संघ की स्थापना करके उन्होंने यह दिखला दिया है कि केवल जैन समाजके ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दू समाज और मानव-समाज के हितैषी हैं। प्रवाह और हवा का रुख देखकर चलना और सस्ती गवाही लेना आसान है, मगर प्रवाह और हवा को अभीष्ट दिशा में मोडना महान कठिन कार्य है। जो ऐसे कठिन कार्य करते हैं, वे ही युग-नेता होते और कहलाते हैं। आचार्य में युग-नेता की झलक देख रहे हैं। उनका यह कार्य दूसरे सम्प्रदायो के आचार्य के लिये भी ध्यान देने योग्य है।



अणुव्रती संघ

—स्वर्गीय किशोरी लाल
घनश्याम मशरूवाला

अणुव्रत का अर्थ है प्रत्येक व्रत का अणु से लेकर सब व्रतों का वढता हुआ पालन । उदाहरण के लिये कोई आदमी जो अहिंसा और अपरिग्रह में विश्वास तो रखता है लेकिन उनके अनुसार चलने की ताकत अपने में नही पाता इस पद्धति का आश्रय लेकर किसी विशेष हिंसा से दूर रहने या एक हद से बाहर और किसी खास ढग से संग्रह न करने का संकल्प करेगा और धीरे धीरे अपने लक्ष्य की ओर वढगा ऐसे व्रत अणुव्रत कहलाते है ।

आचार्य श्री तुलसी ने इस प्रथा का प्रचार करने के लिये अणुव्रती संघ नाम की संस्था शुरू की है । इस सघ में सबका प्रवेश हो सकता है जाति धर्म, रंग, स्त्री पुरुष आदि का कोई विचार नहीं किया जाता । इस सघ ने अपने सदस्यों के लिये अहिंसा, सत्य अस्तेय ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह आदि नाम देकर कुछ विभाग वनाये है और उनमें हरेक के अणुव्रत वतलाये है कुछ नियम तो इतने प्रतत्य है कि हरेक को मानने चाहिए । कुछ ऐसे भी है जिन्हें और ज्यादा कसना चाहिए लेकिन सच तो यह है कि युद्ध के वाद मानव का इतना पतन हो गया है कि वह समाज के प्रति अपने मामूली कर्तव्य को भी नहीं निभा रहा है इसलिए यदि यहां उनकी एक एक कर गिनती की गई है तो अच्छा ही है । सिद्धांत और नियम के प्रति लापरवाह आज के रवैये के खिलाफ लोगो के विवेक को जगाने की यह कोशिश प्रशंसनीय है ।

अणुव्रत का अपरिग्रहवाद

—मुनि श्री [illegible]

परिग्रह की व्याख्या करते हुए सिद्धान्तकारों ने [illegible] "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" अर्थात् मूर्च्छा को परिग्रह [illegible] है। [illegible] है कि जब तक मनुष्य की मूर्च्छा–[illegible] जाती तब तक वह परिग्रह से मुक्त नहीं [illegible] सम्बन्ध पदार्थ से नहीं होकर [illegible] है। [illegible] आत्मा की गृद्धि–विषयक भावना [illegible] अनिवार्य भी है क्योंकि कारण विद्यमान हो तो [illegible] भावी होती है।

जिसकी गृद्धि जितनी तीव्र होगी [illegible] का सकल्प रखेगा। संग्रह [illegible] तथा समाज की [illegible] कर सकता परन्तु तद्विषयक [illegible] रिग्रह नहीं है। अपरिग्रह में मनुष्य [illegible] पदार्थ को दूसरा।

आज जो वस्तु नहीं [illegible] पता से वस्तु को छोड़ता है [illegible] भी अधिक तीव्रता से करता है [illegible] गत भावना को [illegible] वस्तु को छोड़ता है [illegible] प्राप्त होने पर भी [illegible]।

शरीर के साथ वस्तु की आवश्यकता का निश्चित सम्बन्ध है, सारी आवश्यकतायें मिट जायें- ऐसी स्थिति असम्भव है परन्तु आवश्यकताओं के बढ़ते हुए प्रेस को एक बोतल में बन्द किया जा सकता है-एक सीमा में लाया जा सकता है। इसकी न्यूनतम-सीमा क्या हो? यह एक बहुत ही गहन प्रश्न है। विभिन्न परिस्थितियों के विभिन्न मनुष्य एक ही प्रकार की सीमा बना लें यह असाध्य नहीं तो भी दुःसाध्य अवश्य है। मनोविकास की तरतमता इसमें प्रमुखतया बाधक बनती है। मानसिक वृत्तियाँ पदार्थ को केन्द्र मानकर चलती है अतः पदार्थ की न्यूनता दुःख का और अधिकता सुख का कारण मानी जाती है। आज इस भावना को बदल देने की और कम से कम व्यक्ति को स्वयं अपनी एक अन्यूनाधिक सीमा निर्धारित करने को प्रेरित करने की आवश्यकता है।

दूसरा व्यक्ति जबरदस्ती से कोई सीमा बनाकर व्यक्ति पर थोपना चाहे तो यह एक अनधिकार चेष्टा या हिंसापूर्ण चेष्टा हो सकती है। विवशतापूर्वक स्वीकृत सीमा को अवसर पाते ही मनुष्य तोड़ना चाहता है, जब कि स्वतंत्रता से किए गये अस्वीकार को स्वभावतः ही आजीवन निभाने का आग्रही होता है।

जिसके पास पहले से ही आवश्यकता से अधिक है उसे उसका परित्याग कर देना चाहिए, जिसके पास आवश्यकता से कम है उसे अपनी सीमा को कसकर, पुनः पुनः देखकर यह निर्णय करना चाहिए कि उसकी आवश्यकता कहाँ तक सीमित की जा सकती है जिससे कि उसका अन्तिम बिन्दु स्थापित किया जा सके। इस युग में अपरिग्रह के दो अर्थ फलित होते हैं—अस्वीकार और परित्याग।

'अपरिग्रह' शब्द से अस्वीकार-अग्रहण का अर्थ तो स्पष्ट ही भासित होता है। अनावश्यक का अग्रहण ही श्रेयस्कर है। जिससे कि अपनी गृद्धता को बढावा न मिले और वस्तु का प्रवाह भी अवरुद्ध होकर कहीं

अपनी वदबू न फैलाये। दूसरा वर्ग 'परिग्रह' को यदि [illegible] कर लिया हो तो क्या करे ? इसका एक उत्तर है। पहले वर्ग [illegible] है—गल्ती न करना और दूसरे का भाव है—[illegible]।

अणुव्रत में उल्लिखित 'अपरिग्रह' शब्द उपर्युक्त इन [illegible] को सूचित करता है। वार्तमानिक दर्पदार [illegible] कोई औषधि हो सकती है तो यही कि व्यक्ति [illegible] रिपत अर्थ का [illegible] और परित्याग करे।

यद्यपि व्यक्तिगत [illegible] होना अनिवार्य है और इसी कारण [illegible] की जा सकती— फिर भी व्यक्ति की भावना [illegible] और परित्याग की ओर झुकाव करने के लिए [illegible] सकता है। यदि सुधार की ओर एक भी कदम [illegible] हो नहीं रुकता, उसका और आगे बढ़ना भी [illegible] और परित्याग रूप अपरिग्रह की भावना यदि एक बार [illegible] प्रारम्भ हुई तो आगे चलकर उसके [illegible]।

चिरकाल से अर्थ-जनित [illegible] इच्छानिरोध की ओर मोड़ना दुष्कर जरूर है [illegible] अनिच्छा में परिणत कर दिया जाता है [illegible] रह जाता है, वह तो स्वयं [illegible] जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो [illegible] है। यह [illegible] क्योंकि उसमें इच्छाओं की तृप्ति [illegible]।

वर्तमान सामाजिक जीवन में [illegible] गई है तो भी एक अणुव्रती [illegible] यही ठहरा रहे—यह [illegible]

चरण-न्यास यह हो कि देश के आनुपातिक अर्थ से अधिक का वह परित्याग कर दे यह पूर्ण अपरिग्रह और विषय परिग्रह (आर्थिक असमानता) की मध्य रेखा है। यहाँ असमानता के सारे विवाद अपने आप शान्त हो जाते हैं।

यद्यपि अणुव्रत आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की आत्म-स्थित इच्छाओं को सीमित या नियन्त्रित करना ही है तथापि उसके आनुपगिक रूप से आर्थिक-असमानता भी फलित हो जाती है। आर्थिक समानता से भी इच्छा निरोध का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण और वास्तविक है, क्योंकि समानता हो जाने के बाद उसके स्तर को उन्नत से उन्नतर और फिर उन्नततम बनाने का प्रयास चालू हो जाता है। इसका अर्थ होता है व्यक्ति जिन इच्छाओं का दास था अब जन-समूह भी उनका दासत्व स्वीकार कर लें पर यहाँ अपरिग्रह के सिद्धांत में तो इच्छाओं के विरुद्ध ही मोर्चा है। अर्थ इच्छाओं का एक मूर्त्त रूप है। अतः इच्छाओं के विनाश या नियंत्रण के साथ ही उसकी सत्ता समाप्त हो जाती है। इसलिए इच्छानिरोध को प्रमुख स्थान देकर चलना ही संक्षेप में अणुव्रत आन्दोलन का अपरिग्रहवाद है।

अणुव्रत आन्दोलन पर एक दृष्टि

—श्री रामगोपाल [illegible]
(संपादक [illegible] दैनिक)

लगभग चार वर्ष से हमारे देश में अणुव्रत आन्दोलन की चर्चा चल रही है। इस आन्दोलन की प्रशंसा देश के नेताओं, विचारकों और समाचार पत्रों ने तो की ही है, विदेशों के भी कुछ विचारकों और समाचारपत्रों ने इस आन्दोलन को मानव-समाज के लिये हितकारक बतलाया है।

इतना होने पर भी हमारे देश के अनेक व्यक्ति और [illegible] हैं। जो इस आन्दोलन को सन्देह, अथवा उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। जो लोग ऐसा करते हैं उनके ऐसा करने का कारण [illegible] और संकीर्णता पर आधारित है। उन्होंने या तो यह भली भांति समझा ही नहीं कि अणुव्रत है क्या और या इस आन्दोलन को एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य, मुनियों तथा साधुओं द्वारा चालू किया गया जानकर उसे उपेक्षा और सन्देह की दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया।

अतः यह भली भांति समझ लेना चाहिये कि यह आन्दोलन है क्या और इसे चलाने वालों का इसे चलाने में मूल उद्देश्य क्या है। केवल किसी धर्म विशेष अथवा सम्प्रदाय-विशेष से सम्बद्ध होने के कारण किसी वस्तु को अग्राह्य मान कर उसकी उपेक्षा करने की प्रवृत्ति बुद्धि-संगत तो है ही नहीं, [illegible] भी है।

सत्य-भाषण आदि सदाचार के ऐसे अंग हैं जो सभी धर्मों में सम्मिलित हैं और जिनका विरोध अधार्मिक मनुष्य भी नहीं कर सकता। परन्तु यदि कोई व्यक्ति इन सर्व सम्मत और सर्व सम्मानित आचारों के उपदेश की ओर से अपने कान केवल इस कारण मूंदने लगे कि उसे, उसके धर्म अथवा सम्प्रदाय से भिन्न धर्म या सम्प्रदाय का कोई उपदेशक या गुरु कर रहा है, तो वह अपनी ही हानि करेगा, उस गुरु की, या उपदेशक की या उसके धर्म या सम्प्रदाय की नहीं। कोई किसी सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्प की ओर से अपनी आंखें तथा नाक केवल इस कारण नहीं मोड़ लेता कि वह पराये बगीचे में खिल रहा है। हम पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्द्धक अन्न का केवल इस कारण परित्याग नहीं कर देते कि वह हमारे खेत में उत्पन्न नहीं हुआ। पुरानी कहावत है, 'बालादपि ग्रहीतव्यं युक्तमुक्त मनीषिभिः।

अणुव्रत आन्दोलन का आरम्भ लगभग चार वर्ष पूर्व श्वेताम्बर जैन धर्म के अंतर्गत तेरापथी सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी ने किया था और इसमें उनका उद्देश्य तेरापंथी सम्प्रदाय का विस्तार करना नहीं, अपितु 'जाति, वर्ण, देश और धर्मका भेद-भाव न रखते हुये मानवमात्र को संयम-पंथ की ओर आकृष्ट करना' था। इस आन्दोलन की ओर जैनेतर सज्जनो के भी बहुसंख्या में आकृष्ट होने का प्रधान कारण यही है कि इसमें प्रतिपादित आचारों का सम्बन्ध धर्म-विशेष या सम्प्रदाय-विशेष से न होकर मानवमात्र के कल्याण से है।

कोई भी मनुष्य जब किसी कार्य का आरंभ करता है, तब स्वभावतः और अनिवार्य-रूपेण अपने ही साधनो से करता है। पीछे उसकी सफलता अथवा उस कार्य के गुणो से आकृष्ट होकर अन्य लोग भी उसके सहायक बन जाते हैं। इसी प्रकार तेरापंथ के आचार्य श्री ने भी स्वभावतः इस व्रत का उपदेश पहले-पहल अपने ही शिष्यों को किया। और

समस्यायें और समाधान

यह एक चक्र है—क्रूरता से शोषण, शोषण से संग्रह, संग्रह से विलास और विलास से क्रूरता को पोषण मिलता है।

यही सब समस्याओं की मौलिक समस्या है, सब कठिनाइयों में कठिनतम कठिनाई है। इसी को स्थूल रूप में 'आर्थिक समस्या' और आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है, कहा जाता है। इसे [illegible] लिए सामाजिक नेता दान की, त्याग की और अपरिग्रह की [illegible] बताते हैं।

सूक्ष्म रूप में वह आत्मिक समस्या है। आध्यात्मिक क्षेत्र में यह सबसे बड़ी समस्या मानी जाती है इसलिए आध्यात्मिक नेता कहते हैं—त्यागी बनो, अपरिग्रही बनो।

इस समूचे संसार के मानपट पर दृष्टि डालें, जहां कहीं [illegible] हैं, वे इसी धुरी के लगभग हैं। आर्थिक समस्या [illegible] क्रान्ति होती है, रक्त की होली खेली जाती है, [illegible] नग्न नाच का मौका मिलता है। [illegible] में ऐसा हुआ, [illegible] और-और जगह भी ऐसे खेल खेले जा रहे हैं। [illegible] सोचेगा तो वह इससे कैसे बचेगा?

विनोबा जी कहते हैं— [illegible] हृदय हवा से इसको प्रयोगशाला रहा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दो हैं—दान और [illegible]।

अब आध्यात्मिक जगत् पर दृष्टि डालिये—मानव समाज का जितना पतन हो रहा है उसका मूल स्रोत है— इच्छा का अनियंत्रण। इच्छा का नियंत्रण नहीं होता तब संग्रह होता है, शोषण होता है और सब कुछ होता है। सब राष्ट्र और सब व्यक्ति इसके इंगित पर नाच रहे हैं। मूल स्वस्थ नहीं होगा तो भूल नहीं सुधरेगी। हिंसा का वेग बढे, यह इसके कारण परिशोधन पर अवलम्बित है।

आचार्य श्री तुलसी की अपेक्षा है—संयम या अहिंसा भारत की देन है। भारतीय जीवन उसमें ओत-प्रोत रहा है। हिंसा परिग्रह से बढती है या परिग्रह के लिए बढती है। परिग्रही बनते हिंसा नहीं छोड़ी जा सकती और अहिंसक बनते परिग्रह नहीं बढ़ाया जा सकता। इच्छायें खुली हैं तब तक अपरिग्रह नहीं आ सकता इसलिए अणुव्रती बनिये। यह आध्यात्मिक क्रान्ति है। अणुव्रत आन्दोलन की दो अपेक्षायें हैं—त्याग और अपरिग्रह।

भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक हैं—आचार्य विनोवा और अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक हैं—आचार्य श्री तुलसी। दोनों आन्दोलन आर्थिक समस्या को छूते हैं। उसे छूने की पद्धति दोनों की अपनी-अपनी है। आचार्य विनोवा जनता की आवश्यकता पूर्ति के द्वारा वर्तमान समस्या को सुलझाना चाहते हैं। उसके साधन दो हैं—दान और अपरिग्रह। दान इसलिए कि अभाव मिट जाय जिससे कि हिंसा को वेग न मिले। अपरिग्रह इसलिए कि अपने अधिकारों से अधिक लेना अधर्म का मूल है। यह तत्व जन-मानस में रम जाय।

आचार्य श्री तुलसी व्रत निष्ठा के द्वारा आत्मा की सनातन समस्या को सुलझाना चाहते हैं। उसके साधन दो हैं—त्याग और अपरिग्रह। त्याग का प्रयोजन है- स्व-नियन्त्रण की क्षमता बढ़े। स्व से स्व का नियमन किये विना बुराई से बचाव नहीं होता।

अपरिग्रह का प्रयोजन है—बुराई या उन्माद [illegible],
से बचा जाय, उनका ब्राह्मण हो। [illegible]
क्या बने ? शोषण और दान दोनो चलें, इनमें भी [illegible]
सरल नही होती। भूदान यज्ञ में 'दान' शब्द है [illegible]
पुराने दान से भिन्न है। विनोबा कहते हैं—धर्म और [illegible]
से मत दो; भाईचारे की भावना से दो।

अणुव्रत-आन्दोलन की भावना यह है कि [illegible]
तुम्हारा अधिकार नहीं है। अनधिकार वृत्ति से [illegible]
रखा है उसे त्याग दो। अनधिकार [illegible], जो तुम्हारा नहीं है [illegible]
का नहीं, त्यागने का अधिकार है। तुम त्याग दो, [illegible],
यह चिन्ता मत करो।

अतिरिक्त संग्रह वह है जो तुमने आवश्यकता [illegible]
आकांक्षा की पूर्ति के लिए जोड़ा है। अतिरिक्त [illegible]
कर्म-प्रधान है, समाज के अधिक निकट है और [illegible]
धर्म-प्रधान है, आत्मा के अधिक निकट है।

भूदान का स्थूल रूप दान है और सूक्ष्म रूप त्याग। [illegible]
अपने अतिरिक्त धन का कुछ अंश दे दें तो समाज [illegible]
मिट जाय। यह वर्तमान की चिकित्सा है। [illegible]
बड़े बिना स्थायी चिकित्सा नहीं होगी— [illegible]
मानते हैं

अणुव्रत का स्थूल रूप त्याग है, सूक्ष्म [illegible]।
समाज की वर्तमान आर्थिक व्यवस्था [illegible]
करता किन्तु आनुषंगिक [illegible]
निकला है।

भूदान की भावना वाहरी स्थिति के सुधार के द्वारा व्यक्ति के सुधार की ओर जाती है। अणुव्रत-भावना व्यक्ति सुधार के द्वारा बाह्य स्थिति के सुधार तक पहुँचती है।

अणुव्रत और भूदान के प्रवर्तक अध्यात्म निष्ठ है। दोनो ही अहिंसा और सत्य को जीवन का केन्द्र-बिन्दु मानकर चलते है। दोनो की जीवन भूमिका सर्वथा सदृश नही है इसलिए आन्दोलन के रूप और ध्येय में अन्तर है, गौण और मुख्य का भेद है किन्तु फलित रूप में दोनों लगभग एक रेखा पर आ जाते है।

श्रम बढे शोषण मिटे—भूदान की प्रवृत्ति इस ओर है।

अणुव्रत दृष्टि यह है--शोषण मिटेगा तब श्रम अपने-आप बढ़ेगा। श्रम जीवन की आवश्यकता है, साध्य नही। साध्य है जीवन की पवित्रता या आनन्द।

शोषण से पवित्रता मर जाती है, आनन्द लुट जाता है। अन्याय करनेवाला स्वयं को शांत नही पाता। मनुष्य बुराई करने के लिए क्रूर है, बुराई के प्रति ग्लानि न हो इतना क्रूर नहीं। आत्म - वंचना भले ही रंग न लाये। ऊपर से अन्तरात्मा में यह अवश्य खलती है। उसके रंग में रंगा मनुष्य वाहरी साधन पाकर भी अपने को खोया हुआ सा अनुभव करता है।

जीवन का सर्वोपरि मूल्य शांति है। वह बनी रहे इसके लिए पवित्रता की अपेक्षा है। पवित्रता को संयम की अपेक्षा है, संयम को आत्म-रमण की अपेक्षा है। संयमी वह है जो दूसरों का सुख न लूटे। जो ऐसा होगा उसे स्व निर्भर या अपने श्रम पर निर्भर होना ही पड़ेगा।

अणुव्रत और भूदान दोनो का अन्तिम रूप विलास और शोषण का अभाव है। दोनो की अपेक्षा सुन्दर है किन्तु स्थिति जटिल। जटिल मनुष्य की सहज स्थिति विलास की ओर जाती है। विलास आत्मा का सहज धर्म

अपने ही शिष्यों द्वारा उसका प्रचार करवाया। पीछे [illegible] उधर आकृष्ट हो गये।

अणुव्रत में जिन आचारों [illegible] लिवायी जाती है वे सब हिन्दू अथवा वैदिक धर्म में भी [illegible] अज्ञात काल से प्रचलित हैं। "सत्यास्तेय [illegible]।" इन्हीं पांच आचारों के पालन की प्रतिज्ञा [illegible] शब्दों में करवायी जाती है। भेद केवल इतना [illegible] वाक्य में इन पांचों आचारों का निर्देश [illegible] है और अणुव्रत की प्रतिज्ञाओं को भाषा [illegible] कर उसको सुधारने की आवश्यकताओं के अनुसार बनायी गई है।

अणुव्रत का सम्बन्ध केवल तेरापंथी से नहीं है, [illegible] से स्पष्ट हो सकता है। आचार्य तुलसी ने [illegible] रणों का प्रचार 'अणुव्रत' के नाम से आरंभ किया, [illegible] उन्हीं विचारों का प्रचार, लगभग उसी समय [illegible] विनोबा भावे ने 'सर्वोदय' नाम से किया। सर्वोदय [illegible] विनोबा भावे के साथ जोड़ा जाता है। परन्तु [illegible] गांधी जी के एक अन्य शिष्य [illegible] था, वह बात स्वयं विनोबा भावे भी मानते हैं।

ऊपर पांचों नियमों का सूचक वाक्य [illegible] ही है कि अणुव्रतों का मूल हिन्दू धर्म में भी है, [illegible] और श्लोक आदि इस विचार की पुष्टी में [illegible] है।—"धृति. क्षमा दमोऽस्तेय शौच [illegible] दशकं धर्म लक्षणम्"। पांच यमों के अतिरिक्त [illegible] ध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः" शास्त्र में [illegible] यमों की साधना में सहायता के लिए [illegible] हैं।

अब तक जिस प्रकार यह बतलाया गया कि अणुव्रतों का सम्बन्ध केवल तेरापंथ से नहीं, उसी प्रकार हमारा सुझाव है कि इस आन्दोलन के विस्तार में यदि कुछ जैनेतर साधु और सन्यासी भी सहायक हो जांय तो इसका विस्तार तो शीघ्र होगा ही, जो लोग इधर संकीर्णतावश आकृष्ट नहीं होते उनके संशय और संकीर्णता के भाव भी दूर हो जायेंगे। निःसंदेह, इस सुझाव को क्रियान्वित करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ है, परन्तु उन्हें यत्न करके दूर किया जा सकता है। केवल कठिनाइयो के भय से कार्य का आरम न करना, दूरदर्शिता तो नहीं है।

"प्रारम्यते न खलु विघ्न भयेन नीचैः, प्रारभ्य विघ्न–विहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना, प्रारब्ध मुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥"

आध्यात्मिक आन्दोलन—अणुव्रती संघ

—मुनि [illegible]

सुख-दुःख की अनुभूति आत्मा [illegible]

सुख-दुःख की अनुभूति व्यक्ति की [illegible] साधन सामूहिक हो सकते हैं पर वे [illegible] वित करते हैं किन्तु उनसे [illegible]

सुख-दुःख नितांत अपनी [illegible] आत्मा का सहज गुण है, दुःख, भय, [illegible] तात्पर्य—दुःख अपना 'स्व' नहीं किन्तु पर [illegible] महावीर के शब्दों में—'प्राणी दुःख से [illegible] हैं'। जो सहज सुख नहीं, सुख की [illegible] वह भी आत्म [illegible] होता है। [illegible] हैं वे साधन-सापेक्ष हैं। रोटी के बिना दुःख [illegible] मिलने पर सुख।

[illegible] चाहिये कि [illegible] अभाव और संयोग-वियोग हैं। [illegible] सुख का निमित्त बनता है। [illegible] दुःख का।

[illegible]

नहीं पर वे आते हैं। प्रिय साधन अपेक्षित हैं पर वे सुलभ नहीं होते। कारण उनके संग्रह की स्पर्धा चलती है और वही अशांति या कलह का बीज मूल है !

आनन्द वाह्य साधनों से परे

सहज-आनंद उन्हीं को साध्य होता है जो आत्म-विकास की उच्चतम भूमिका पर पहुँच चुके। वे अपरिग्रही बन जाते हैं। बाहरी साधनों का ग्रहण उनका ध्येय नहीं होता और वे उनके द्वारा सुख-प्राप्ति की कल्पना को भी स्वाभाविक नहीं मानते।

संग्रह का हेतु और उसका परिणाम

प्रतिशत ९९ व्यक्ति बाहरी साधनों से सधने वाले सुख के लिए ही क्रियाशील हैं। वे सुखी बन जाँय इसलिए उनका संग्रह करते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप में दूसरों को दुःखी बनाने नहीं चलते। उनमें अपने सुख की वृत्ति होती है पर इस प्रक्रिया में वे दूसरो को दुःखी किये बिना रह नहीं सकते। शोषण और वंचना के बिना संग्रह नहीं होता। संग्रह के बिना उन्हें मानसिक सुखानुभूति नहीं होती। स्वल्प संग्रह दैहिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए हो सकता है। यह सुखानुभूति नहीं है। आवश्यकता एक व्याधि है और पूर्ति है उसकी चिकित्सा, रोग मिटाने के लिए औषधि लो, उसमें सुख की कल्पना कौन करे ?

आवश्यकता नहीं, केवल तृप्ति मिले वहाँ सुख की कल्पना जुड़ती है। उसके लिए अतिरिक्त संग्रह चाहिये। वह हो तब; अपेक्षा-पूर्ति का नहीं, विलासी जीवन बिताया जा सकता है। विलासी व्यक्ति अपने लिए ही देखता है, दूसरो के लिए उसकी आँखें खुली नहीं रहती। यहीं आकर क्रूरता, निर्ममता और शोषण के बीज विकास पाते हैं।

नही है। मोहमूढ दशा में यह सहज जैसा बन जाता है। उससे तृप्ति नही मिलती किन्तु क्षणिक सुख की प्रतीति होती है। उस प्रतीति में फँसकर मनुष्य उसे सहसा त्याग नही करता इसलिए भोग का प्रयत्न प्राप्त हो रहा है। भोग के लिए परिग्रह और परिग्रह के लिए हिंसा—यह क्रम चलता है।

अहिंसक समाज की रचना

दोनों आन्दोलनों की कल्पना है— अहिंसक समाज बने। अहिंसा का अर्थ सर्व हिंसा त्यागी मुनि बने यह नहीं है। व्यावहारिक मात्र अहिंसा और सत्य को मानकर चले वैसा समाज बने।

अहिंसक समाज में हिंसा, भोग और परिग्रह नहीं होंगे ऐसी बात नहीं किन्तु उनमें आवश्यकताओं से बढ़कर इनका सुख नहीं होगा। वे साध्य तो नहीं ही होंगे।

भारतीय मानस अहिंसा का पुजारी है इसलिए किसी भी समस्या का समाधान करते वह दृष्टि से ओझल नहीं होती। प्रेम और शुद्ध व्यवहार के द्वारा समस्यायें सुलझ सकती हैं यह विश्वास दृढ़ रहा है। व्यवहार शुद्धि आन्दोलन और भारत सेवक समाज आदि संस्थायें इसी के साकार परिणाम हैं।

सामाजिक व्यक्ति अपनी सारी समस्यायें पूर्ण अहिंसा से सुलझा सकें ऐसी बात नहीं है। हिंसा को छोड़ लिये बिना अहिंसा को आदर्श मानकर चलते हैं यह अहिंसक चेतना का ही फल है।

जन जीवन को पवित्र बनाने वाले या उन्नत बनाने वाले भारतीय आन्दोलनों में ये चार प्रसिद्ध आन्दोलन हैं। तात्पर्य कि मूल्यांकन करने का प्रश्न है। मूल्यांकन एक दृष्टि से ही किया जाये यह ठीक नहीं होगा। ये विभिन्न मूल्यों पर आधारित हैं इसलिए इनका मूल्यांकन भी विभिन्न दृष्टि-बिन्दुओं से होना चाहिए।

अणुव्रत आन्दोलन का दृष्टिकोण

समाज का घटक व्यक्ति है और व्यक्ति का घटक चरित्र। व्यक्ति का स्थूल रूप चरित्र से नहीं बनता। अणुव्रत आन्दोलन चरित्र को मुख्य मानकर संयम पर अधिक बल देता है। उसकी साधना का मुख्य अंग संयम है।

भूदान यज्ञ का दृष्टिकोण

समाज में असंयम होता है यह खास बात नहीं, उसकी मात्रा बढती है,यह चिन्ता की बात बनती है। मनुष्य जीवनका आधार रोटी पानी है। उसका साधन है भूमि। रोटी मिलती रहे तो मनुष्य अधिक क्रूर नहीं बनता। भूखा आदमी क्या पाप नहीं करता? वह सब कुछ कर लेता है। क्रूरता बढ़ी उसके पीछे भूख का इतिहास है। भूमि का सम वितरण हो जाये तो असंयम की बढती मात्रा रुक सकती है—इस दृष्टि को मुख्य मानकर भूदान आन्दोलन चल रहा है।

अणुव्रत आन्दोलन के प्रयत्न से संयम की मात्रा बढती है उससे भूदान को सहयोग मिलता है और भूदान से रोटी की समस्या सरल होती है रोटी के लिए होने वाला असंयम कम होता है। उससे अणुव्रत-आन्दोलन को सहयोग मिलता है। कारण साफ है:—

१—चरित्र आत्मा को सुधारता है फलस्वरूप बाहरी स्थितियां स्वयं सुधरती हैं।

२—बाहरी स्थितियां विकृत होती हैं फलतः चरित्र में विकार बढ़ता है।

यद्यपि चरित्र बाहरी स्थितियों के विकार और सुधार पर एकान्तः निर्भर नहीं है और न होना ही चाहिए। फिर भी बाहरी परिस्थितियों के प्रभाव से वह सर्वथा निर्लेप रहता है—यह नहीं माना जा

सकता। बाहरी स्थितियाँ [illegible]
सम्भावनायें होती हैं और उनकी [illegible]।

व्यवहार शुद्धि आन्दोलन [illegible]

राष्ट्र का व्यवहार शुद्ध होता है, [illegible]
हार अशुद्ध होता है वे दुर्लभ बन जाती हैं। [illegible]
राष्ट्र को सत्य का [illegible]
नहीं है। वस्तुएँ दुर्लभ होने पर [illegible]
वह गिरता नहीं। वह [illegible]
है, इस दृष्टि से व्यवहार शुद्धि [illegible]।

व्यवहार शुद्धि का आधार [illegible]

व्यवहार शुद्धि स्वतः प्रवृत्त [illegible]
आन्तरिक साधना के बिना [illegible]
साथ आत्मीयता की अनुभूति नहीं होती [illegible]
और जैन की भाषा में [illegible]
असंयम की वृत्ति नहीं [illegible]
ग्लानि हुए बिना व्यवहार [illegible]
के मूल में [illegible]
बाद और भूदान से पहले [illegible]।

राजनीति से दूर—[illegible]

ये तीनों आन्दोलन [illegible]
समाज की राजनीति से [illegible]
[illegible]
[illegible]

4545

आन्दोलन हैं—जन मानसको जगाने के साधन हैं। इनके पास अहिंसा, प्रेम, उपदेश या सेवा की शक्ति है।

निराशा में आशा की किरण

हिंसा के पीछे कानून की शक्ति होती है। कोई चाहे या न चाहे वह मानना पड़ता है। फल यह हुआ जनता शक्ति की उपासक बन गई। हिंसा सुख नहीं देती, शान्ति नही लाती फिर भी उसमें उत्तेजना होती है इसलिए लोग उस ओर खिंच आते है। व्यक्ति गाली देने वाले को वापिस गाली देने में आकर्षण पाता है—मौन रहने में नहीं। हिंसा में दूसरों को उत्तेजित करने की शक्ति है और वही प्रतिशोध, प्रतिक्रिया का मूल है।

अहिंसा के पीछे शक्ति है—व्रत की। व्रत हृदय की वस्तु है। उसे कोई चाहे तो पाले, नही तो नहीं। व्रत का मार्ग स्वयं कठोर होता है। जन मानस इतना साधनारत नही होता कि वह विलास के मार्ग को छोड़कर व्रत के कठोर मार्ग पर चले। दूसरे अहिंसा में आकर्षण कौन सा है? उसका साधनाक्रम है—मौन, शान्ति और सद्भावना। हिंसा के राज्य में ये मूल्यवान नही लगते। किन्तु हिंसा की उत्तेजना उग्र बन जाती है तब मनुष्य अहिंसा की ओर मुड़ते हैं। अशान्ति का विकराल रूप उन्हें शान्ति की ओर गति देता है। बोलते-बोलते थक जाते है तब मौन मीठा लगता है। आज का संसार इस बिन्दु पर अवस्थित है।

अहिंसा का जीवन में प्रयोग

बौद्धिक चिन्तन वालों ने समझ लिया कि अहिंसा ही एक मात्र शांति है या शान्ति का अधिष्ठान है। जो ऐसा मानते है उनके जीवन में भी वह बड़ी कठिनाई से आती है। अधिकांश लोग इस सत्य को समझ भी

नहीं पाते हैं। अहिंसा अच्छी है इसे प्रमाणित [illegible]
जीवन व्यापी हो सकती है इसे प्रमाणित करने [illegible]
है। अणुव्रत-आन्दोलन इसी दिशा में एक [illegible] है।

कठोर व्रत का आचरण

व्रत अहिंसा का जीवन में प्रयोग है। प्रवृत्ति [illegible]
का आचरण कठोर होता है। असत् प्रवृत्ति से [illegible]
सत् प्रवृत्ति से निवृत्ति कठिनतर होती है। [illegible]
करने (वाणी की सत् प्रवृत्ति) की [illegible] (
होता है। निवृत्ति यो स्वय सत् प्रवृत्ति [illegible]
देने की बात कठिन होगी किन्तु न देने की बात [illegible]
दृष्टि से देखें तब अच्छा कार्य [illegible]
सूक्ष्म-दृष्टि से कुछ और ही बनता है। [illegible]
आत्मा में आता है तभी अच्छा कार्य करने [illegible]
यह है कर्तव्यता को अकर्तव्यता से [illegible]
फलता। स्वयं पर नियन्त्रण की प्रवृत्ति [illegible]
मार्ग या कर्तव्य पथ अपने आप [illegible]
कर्तव्य की [illegible] प्रेरणा नहीं देती। [illegible]
है। निषेध से नियन्त्रण का भाव [illegible]
मार्ग अपने आप खुल जाता है।

व्यापकता में बाधा

अणुव्रत आन्दोलन [illegible]
[illegible]। यदि इसके साथ [illegible]
हमेशा जुड़ी होती तो यह [illegible]

न होना ही इसकी अपनी विशेषता है। भौतिक अपेक्षा का पूरक होकर यह वह शुद्ध दृष्टिकोण नहीं दे पाता जो कि उसका प्रत्यक्षतः पूरक न होकर दे सकता है। वस्तु-निष्ठा समाज की व्यवस्था है। स्व-निष्ठा या सत्-निष्ठा स्वतः मूल्यवान है। सत्य-निष्ठ अभाव में भी दूसरे का अधिकार नहीं लेता। वस्तु-निष्ठ भाव में भी शोषण से नहीं बचता। किंतु सत्य अन्तर-शुद्धि की अपेक्षा है और वस्तु जीवन की, आगे बढ़ें तो विलास की। स्थूल जीवन की अपेक्षा को त्याग कर सूक्ष्म जीवन की अपेक्षा साधनेवाले विरले होते हैं। अधिकांश व्यक्ति स्थूल जीवन की अपेक्षाओं को ही सर्वोपरि मानते हैं इसलिए बहुमत वस्तु-निष्ठा का है। अणुव्रत-आन्दोलन रहा सत्य-निष्ठ इसलिए वस्तु-निष्ठ व्यक्तियों में यह यथेष्ठ व्यापक बने, यह स्वयंभूत समस्या है।

व्यापक आन्दोलन

अणुव्रत प्रसार में इसका भौतिक निरपेक्ष संस्थान आकर्षक का केन्द्र नहीं बनता फिर भी इस संघ में व्यापकता की सम्भावनायें हैं। उसका—

पहला हेतु—इसका असाम्प्रदायिक संस्थान है। यह जाति, वर्ग और सम्प्रदाय से उतना बचा है जितना कि किसी भी व्यापक-संस्थान को बचना चाहिए।

दूसरा—यह सब धर्मों के सर्वमान्य मौलिक आदर्शों का समन्वय है। किसी भी धर्म का अनुयायी इसे अपना धर्म मानकर स्वीकार कर सकता है।

तीसरा—इसके पीछे कोई मतवाद या विचार का आग्रह नहीं है। यह चरित्र-विकास या शुद्धि का प्रतीक है।

चौथा—इसमें कर्तव्य का मतभेद नहीं है। [illegible] लिए अकर्तव्य विधियों का निषेध है।

ये चार इसकी स्वरूपगत विशेषतायें इसकी [illegible] खोलती है।

पांचवा हेतु आज की परिस्थिति है। [illegible] आध्यात्मिक-नियन्त्रण चाहता है।

उपर्युक्त सामग्री का आकलन हुआ, जन [illegible] पहुँचा तो यह अवश्य ही जन-मानस में [illegible] अनुष्ठान होगा।



अणुव्रत आन्दोलन

—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
(सदस्य, भारतीय लोक सभा)

मुनि प्रवर आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रारम्भ किया गया अणुव्रत आन्दोलन हमारे देश के नैतिक पुनरुज्जीवन की दिशा में एक मंगलमय एवं आवश्यक चरण-निक्षेप है। भारतवर्ष के द्रष्टाओं ने सहस्रों वर्ष पूर्व मानव-समाज के उत्थान का-उसके नैतिक विकास का-जो तत्व बुद्धिगम, हृदयगम एवं आचरणांगम कर लिया था, उसी की आवृत्ति-मैं कहूँगा उस सनातन तत्व की अभिनव आवृत्ति-यह आन्दोलन है। इस प्रकार के आन्दोलन अनेक रूपों में आज देश में चल रहे हैं। एक प्रज्ञाचक्षु महात्मा स्वामी शरणानन्दजी ने मानव-सेवा समाज की स्थापना का श्री गणेश करके सामाजिक नैतिक विकास की प्रेरणा प्रदान की है। ऋषि विनोवा भावे का भूदान-यज्ञ-आन्दोलन भी इसी नैतिक-विकास की चेष्टा कर रहा है। आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत-यज्ञ भी देश की आत्मा को और इस देश की समस्या को सजीव रूप से स्पर्श करता है। देश की आत्मा मानो आज एक अन्धे गलियारे में आकर अटक गई है। इसी देश की क्या समूची मानवात्मा। और:—

आकर अन्धे गलियारे में ठिठका जब गति का रुद्ध चरण,
अविशुद्ध लगन, हत वृद्ध वचन, जब ठिठका संभ्रम रत जन-मन,
आशंका का आनद्ध बजा, जब संशय की दुन्दुभी बजी,

जब तर्क असद्ध समर्थ हुआ, [illegible] ।
जब रक्त रान गतिमान हुआ, जब [illegible] हो गये [illegible],
श्वासोच्छ्वास मिल अन्तर का फुफकार हटा जब [illegible] ।

जब ऐसी स्थिति हो गई, तब ये विनोबा, ये [illegible], ये प्रज्ञाचक्षु महात्मा शरणानन्द हमें जीवन का [illegible] देने के लिये हमारे बीच प्रकट हो गये ।

मानव समाज की इस समस्या के निराकरण [illegible] गमन (Opprach) को मैंने सनातन कहा है । [illegible] और अपनी बुद्धि को यह [illegible] समझा देनी है कि मानव की वर्तमान समस्या की [illegible] । हम सब येन केन प्रकारेण जीवन-यापन तो करते ही हैं पर [illegible] यापन करते हुए भी, मानो हम किसी वस्तु की खोज में [illegible] । खोज टोह किस बात की ? इस बात की कि जीवन [illegible], [illegible] मय, उल्लासमय निरलस कर्ममय, मैत्री-[illegible] सम्भव बने । और हम जीवन में जाने क्या है ? [illegible] व्यवहार, क्रूरता, हिंसा, [illegible], [illegible] । [illegible] अपने में अन्तर्द्वन्द्व पाते हैं । हम अमन् [illegible] । [illegible] हम उनको अति [illegible] करने के [illegible] है । [illegible] समाज की समस्या है ।

हम नवनीत हैं । हम बैर भाव तो [illegible] और हम चाहते भी हैं कि हम मनोविकारों से [illegible] । [illegible] वास्तव में यदि हम कहे तो यो कहेंगे कि [illegible] और अधिक विकास की (FutherEvclut[illegible]) [illegible] विकृत जन्तु और आगे [illegible] ?

है, और ऊँचे नहीं उठता है तो मानवता का विनाश हो सकता है। मानव को और अधिक विकसित होना ही होगा इसके अतिरिक्त उसके लिये गत्यन्तर नहीं है।

मानव के ऊर्ध्वगमन अर्थात् और अधिक विकास के लिये यह आवश्यक नही है कि उसके शारीरिक ढांचे में कोई प्राणि-शास्त्रीय (Biological) परिवर्तन हो। इसी साढे तीन हाथ के पुतले में ही महाप्राण मानवों का रूप धरा है, यह हम जानते है। राम, कृष्ण, जिन, देव तथागत, यीशु, खीस्ट, गांधी--ये सब जोसेन्द्रीय होते हुये भी निरिन्द्रियवत् रहते रहे,--इसी साढ़े तीन हाथ के ढांचे वाले ही तो थे न ! अतः आज हमें भौतिक विकास के लिये प्रयत्न नही करना है। हमारा यह साढ़े तीन हाथ का तन महा मानवत्व की ओर नारायणत्व की ओर हमें ले जाने में सर्वथा समर्थ है। हमारे पूर्व अवतारी पुरुष इस बात के अकाट्य प्रमाण है।

तब प्रश्न है कि मानव-समाज विकसित कैसे हो ? कोई माने चाहे न माने, मार्ग वही है जो हमारे पूर्वज हमें दिखा गये है। क्षमा, तप, दान, शौच, त्याग, शान्ति, अपैशुनता, भूतदया, अलो-लुपता, अचापल्य, मार्दव, आत्म-विनिग्रह, आदि गुणों को जीवन में लाये बिना काम चलने का नहीं। लोग कह उठते है ! अजी सामाजिक ढांचा बदलो, सब ठीक हो जायगा क्या सचमुच ! जहां सामाजिक ढांचा बदल गया है यहां क्या महामानवों का आविर्भाव होने लगा है ? नही,, भाई ! सामूहिक परिवर्तन, सामाजिक नव-निर्माण की आवश्यकता से मुझे इन्कार नही। पर उसे न भूलो, जो समाज-भवन की ईंट है। वह है "व्यक्ति"। व्यक्ति का परिवर्तन

आवश्यक है । और यहां हमारा मार्ग प्रदर्शन तुलसीजी, [illegible] करते हैं ।

अणुव्रत-एक छोटा सा व्रत जीवन में अंगीकार करो । [illegible] निभाओ । तुम देखोगे कि परिवर्तन आरम्भ हो गया है । "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" । मेरी समझ में यही [illegible] तुलसी का सन्देश है । कुम्हार, लुहार, चमार, व्यापारी, [illegible] एक अणुव्रत के द्वारा-एक छोटे से व्रत के सहारे-जीवन में, [illegible] प्रकार समाज में, परिवर्तन ला सकते हैं । [illegible] तत्व हृदयंगम कर लिया था । इसी कारण वे [illegible] देते थे । आचार्य तुलसी ने यह अणुव्रत [illegible] समाज का पथ-प्रदर्शन किया है । मैं उन्हें युग [illegible] मानता हूं । मैं उनके सत्-आचरणशील [illegible] अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं ।

[illegible]

राह की खोज

—बाल मुकुन्द मिश्र

हम मनुष्य हैं और सभ्य हैं और हमारे समाज का दावा है कि इस धरती पर हमारी ही जाति महान् है। मनुष्य ने बुद्धि पाई है, उसे उसका उपयोग करना आता है, इसीलिए वह अपना निर्माण कर सकता है। ससार में अपने व्यक्तित्व के नीचे—सकल विश्व की जड़-चेतनता पर आधिपत्य जमा सका। मनुष्य जाति के एक सदस्य के नाते इस गर्वोक्ति को स्वीकार कर लेता हूँ, और उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी भी मान लेता हूँ। पर यह देखकर मन ग्लानि से भर-जाता है कि शांत, सौम्य, सुन्दर, आनंदमय और दर्शनीय इस धरती पर हम अपने आचरणों से करने क्या जा रहे हैं ?

आज हमने प्रकृति और उसकी नैसर्गिक गति पर विजय पाने की जैसे शपथ ली है। सोचने की बात इस समय यह है कि क्या इतनी सी ही विजय से 'मनुष्य' का उद्धार सम्भव है ? आज हमारी हालत है यह कि विज्ञान के विकास के साथ संसार से पूर्व-युग का सहयोगी समाज समाप्त हो गया और उसके स्थान पर प्रतियोगी समाज की स्थापना हुई। इस प्रतियोगी समाज की प्रतियोगिताका मुख्य लक्ष्य बना-अर्थ-और इस प्रकार आज का युग अर्थ प्रधान युग कहलाने लगा। यदि विज्ञान ने देशों की दूरी को मिटाकर संसार को संकुचित कर दिया तो अर्थ ने मनुष्य की उदारता-को मिटा कर उसे स्वार्थी बना दिया है। वह स्वार्थी मनुष्य आज अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए संघर्ष-

शोल है, अत. चारो ओर हाहाकार, चीत्कार और [illegible] के अतिरिक्त कुछ नही दिखाई देता। एक ओर अति है तो दूसरी ओर [illegible]। इसलिए एक ओर संतोष है तो दूसरी ओर असंतोष। जिनके पास जितना है उसे वह दबाये बैठा है, उसमें से देना नहीं चाहता, [illegible] पास नही है वह संतोष नही कर पाता और छीन लेना चाहता है। एक विचित्र दौड धूप, एक विचित्र छीना झपटी आज के संसार में चल रही है।

यह सब किसलिये ? केवल मात्र अर्थ के लिए। [illegible] चेतन मानव को भी जडता की ओर उन्मुख कर दिया है। [illegible] चादी की चमक से चौंधियाया हुआ मनुष्य और [illegible] भौतिक सुख और शाति की पूर्ति के लिए [illegible] है। जीवन का चैतन्य इन वर्षों में [illegible] है। मनुष्य में से प्राणित्व का लोप होता जा रहा है और [illegible] उसका हृदय भी अनुर्वर और जड बन गया है। [illegible] प्रकृति से पृथक् किया तो अर्थ ने [illegible] है। [illegible] की भावना शेष रह गई है न तपस्या की, न [illegible] विश्वास का तो जैसे लोप हो गया। मनुष्य दूसरे [illegible] वर्ग को, एक देश दूसरे देश [illegible]।

विश्व शाति के सभी [illegible] रहे है और फिर प्रतियोगिता की दौड धूप [illegible] कालिमा उदय होकर ससार पर छाती [illegible]।

दूसरे महायुद्ध के बाद सारे संसार में [illegible] जिसके आघातों से [illegible]

संस्थापना हुई। मगर आज मानवता सुख और शांति का अनुभव नही कर रही है। महायुद्धों की कालिमा ने मानव रूप को विकृत कर दिया है। सत्य तो यह है कि जनतन्त्रवाद विकृत नहीं वल्कि जन जन के मन में विकृति आई हुई है। चारों ओर भ्रष्टाचार का वोलवाला है—क्या राजनीति क्या धर्म, क्या संस्कृति और क्या कला।

हमारे देश में स्वतन्त्रता आई। परतन्त्रता के कारण अवरुद्ध उन्नति का मार्ग खुला। पर देश में सुख और शांति नही आई। त्रस्त जनता को त्राण नही मिला। क्यों? क्योंकि मनुष्य में और समाज में उर्वरता नही थी। दूसरे शब्दों में उसमें सहयोगिता और विश्वास नहीं था। अतः आज समाज को मानवता और सामाजिकता की वर्णमाला की आवश्यकता है। यह निश्चित है यदि समाज को सामाजिकता और मानवता का पाठ नही पढ़ाया गया तो समाज, देश, राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकेगा। वर्तमान संत्रस्त संसार को आज शान्ति चाहिए। शान्ति इसलिए उसे चाहिए कि युद्ध और संघर्ष से जैसे अव वह थक चुका है, प्राण रो रहे हैं और वह इतना खिन्नमना हो चुका है कि वह अव जीने से वेजार है, लेकिन विवश है। वह मरना नही चाहता, वह 'अमृत-पुत्र' के रूप में वदल जाना चाहता है, लेकिन उसे आपदा और विभीपिका से मुक्ति मिले, तभी तो वह अपने को सच्चे अर्थों में निर्माण की ओर लगाये।

कहने को आज का जमाना प्रगति का है। मेरा विश्वास है और दिखाई दे रहा है कि वह 'प्रगति' करेगा भी...पर ठोकर खा खा कर।

क्या ही अच्छा हो समय से पूर्व हमें अभीष्ट [illegible]
मिल जाये । मंजिल पर पहुँचने के लिए [illegible]
को पकड़ कर ही हमें आगे बढ़ना होगा। यही [illegible]

मेरी दृष्टि से वर्तमान में तीन महान् [illegible]
पर ध्यान देने से सम्भव है हमें सही रास्ता [illegible]
भावे का 'सर्वोदय-पथ' [illegible]
संस्कृति-संरक्षा-मार्ग, और मुनि [illegible]

———

अणुव्रत आन्दोलन एक-विचार क्रान्ति

—मुनिश्री नगराजजी

सुधार का आगमन विचारों से प्रारम्भ होता है। पर विचारों का आमूल बदलना क्रान्ति का रूप ले लेता है। आज के लोग सुधार की अपेक्षा क्रान्ति में अधिक विश्वास करने लगे हैं। प्रश्न आता है अणुव्रत आन्दोलन सुधार है या क्रान्ति? कोई न भी माने उत्तर यही होगा कि वह सुधार भी है, क्रान्ति भी। व्यष्टि सुधार से वह समष्टि सुधार की ओर जाता है। इसलिए सुधार है, विचारों की जिस पृष्ठ-भूमि पर यह आश्रित है वह मौलिक परिवर्तन का हामी है। वह समाज को अर्थ-निष्ठ से चरित्र निष्ठ बनाने का आग्रही है। वह समाज के संग्रह-शील, विश्वासों को आवश्यकताओं के स्वल्पीकरण में परिवर्तित करने को कृत-संकल्प है, वह समाज को बहिर्मुख से अन्तरमुख बनाने का पक्षपाती है इसलिए वह एक क्रांति है। अस्तु, कुछ भी हो, सुधार हो या क्रांति, वह अपने आप को चरितार्थ करने में हिंसा और विघटन का पक्षपाती नहीं है क्यो कि हिंसात्मक विघटन किसी स्थायी परिवर्तन को जन्म नहीं देता।

पांच वर्ष के प्रयत्न स्वरूप संघ के पंचम अधिवेशन पर जीवन-शुद्धि की लगभग २३०० व्यक्ति प्रतिज्ञायें ग्रहण कर रहे हैं। वर्तमान युग और स्थितियों को देखते हुए यह संख्या प्रयत्न की विराट सफलता को बताती है। हिन्दी के प्रमुख कवि श्री बालकृष्ण नवीन ने यह जिज्ञासा की: साधक अणुव्रतियो में से कितने पूर्ण अणुव्रती होने में असफल रह जाते हैं।

कुछ आंकड़े मिलाकर उन्हें बताया गया लगभग सौ में दस [illegible] वर्ष की साधना के पश्चात अपने आपको व्रत ग्रहण करने में [illegible] पाते। नवीन जी ने कहा इसे मैं प्रयत्न की असफलता [illegible] हूं। प्रतिशत १० व्यक्तियों का सफल होना कुछ कम [illegible] है। चरित्र निर्माण के ऐसे पुनीत प्रयत्नों में यदि १०० व्यक्ति [illegible] १० व्यक्ति ही उत्तीर्ण होते हैं तो वे भी सराहनीय हैं। [illegible] की एक दृष्टि यह है जो सुन्दर है, वह स्वल्प है और [illegible] है। समालोचना की दूसरी दृष्टि तीस करोड़ वासियों में से यदि १८०० व्यक्ति सद्व्यवहारी बन गये तो देश के सामूहिक [illegible] पर क्या प्रभाव पड़ेगा? प्रतिवर्ष ५०० अणुव्रती बनते जायें तो भी [illegible] दुर्भिक्ष का अन्त कब होगा? विस्तृत समीक्षा में जाने से पूर्व मैं [illegible] मान ही लेता हूं कि उक्त विचार के समीक्षक भी [illegible] है कि स्वल्प सुन्दर भी असुन्दर तो नहीं है। दूसरी बात [illegible] देश के सामूहिक नैतिक पुनरुत्थान में क्यों [illegible] पर्याप्त [illegible] भी कुछ मीमांसा कर लेना आवश्यक मानता हूं।

१८०० व्यक्ति व्रत ग्रहण करते हैं इसलिए यह [illegible] व्यक्तियों तक ही विगत अवधि में बना, यह मान लेना भूल है। [illegible] इस संख्या स्वयं बताती है जब इतने, इस कठोर [illegible] प्रविष्ट होते हैं तो अवश्य स्वल्पात् स्वल्प, [illegible] भावना से प्रभावित हुये हैं। अनुप्रतियों की निश्चित [illegible] स्वल्प कहें या अधिक, यह कोई विवाद का विषय नहीं। [illegible] व्यापक सफलता तो नैतिक विचार प्रसार में ही मैं देखता हूं। कोई भी सुधार पहले विचारों में आता है पीछे प्रवृत्ति में। [illegible] को केवल विचार सुनने को मिले हैं [illegible] परिणाम चाहे कुछ भी सामने न आये, किन्तु [illegible] हो जाता है और एक अवधि के पश्चात [illegible]

का रूप ले लेता है। परिवर्तन एवं सुधार की लम्बी परम्परा में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। वाल विवाह, वृद्ध विवाह, मोसर प्रथा आदि बातों को लेकर इस नये युग के साथ एक विचार-क्रान्ति आई। सुधारक जब उक्त प्रथाओं की बुराईयों का दिग्दर्शन कराने लगे। उस समय ऐसा लगता था उन भाषणों और उपदेशों का समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है प्रत्युत् समाज के वयोवृद्ध कर्णधारों के हृदय में सुधारकों के प्रति एक खीज उत्पन्न होती जा रही है। सुधार भावना का समर्थन से विरोध अत्यधिक प्रवल था। किन्तु उस विचार क्रान्ति की सफलता आज एक अवधि के बाद स्पष्ट नजर आती है। वे प्रथायें निर्मूल हो गई हैं– या होने पर है। उन प्रथाओं के समर्थक आज खोजे ही मिलते होंगे। अस्तु, प्रचलित अनैतिकताओं के प्रति जन जन के हृदय में ग्लानि पैदा कर देना ही आन्दोलन की मूलभूत सफलता है। बुराई को बुराई समझा देना ही उसकी पृष्ठभूमि है। यह भी एक मंजा हुआ तथ्य है बुराई तभी तक जीवित रहती है जब तक वह भलाई के नाम से चलती है। जब बुराई, बुराई के रूप में समाज में स्वीकृत हो जाती है तब उसके इने गिने सांस ही शेष रह जाते हैं। इस दिशा में अणुव्रत आन्दोलन की जो प्रगति हुई है वह निकट भविष्य में ही नैतिक मूल्यों के पुनः संस्थापन के आसार प्रकट करती है।

तेरापंथ संस्था के लगभग ६५० कर्मठ तथा विद्वान् भाषणशील साधु साध्वियाँ पाद-विहार से कोटि कोटि ग्रामीण तथा नागरिक जनता को नैतिक संदेश देने का जो व्यवस्थित प्रयत्न करते हैं वह इस विचार क्रांति के पीछे एक अनूठा वल है। ऐसे निस्वार्थ और सतत प्रयत्नशील कार्यकर्त्ता ही इस आन्दोलन की सफलता के उज्जवल नक्षत्र है।

दूसरी वात अणुव्रत आन्दोलन के अन्तर्गत विचार परिषदों का कार्य-क्रम भी विचार क्रान्ति के रूप में आन्दोलन को सफल बनाने में

कम महत्व का नहीं है। अणुव्रत साहित्य व [illegible] इसी बात के पूरक हैं। अणुव्रती १८०० हो हैं, [illegible] से बनते जायें, विचार क्रान्ति के [illegible] से प्रसारित हो रही है उनमें से [illegible] की जीवित आशाएं देखता हूँ। [illegible] नैतिक विचार क्रान्ति के इस गम्भीर [illegible] विधायक व सार्वजनिक कार्य करने को [illegible] उदात्त बनायें।

अणुव्रत बनाम अणुबम

—श्री यशपाल जैन
(संपादक—जीवन साहित्य)

अणुव्रती संघ के प्रति मेरी दिलचस्पी उसकी स्थापना के समय से ही रही है। आज पश्चिमी सभ्यता अपनी पूरी शक्ति के साथ हमारे रहन-सहन, हमारी विचारधारा हमारी संस्कृति आदि सब पर प्रभुत्व डाल रही है। जीवन के मूल्य उसने बदल दिए हैं हमारी दृष्टि अंतर्मुखी होने की अपेक्षा बहिर्मुखी अधिक हो गई है। हम दूसरों के दोषों को तिल का ताड़ बनाकर देखते हैं पर अपने दोष हमें दृष्टिगोचर नहीं होते। वैयक्तिक स्वार्थ साधन ने लोक या समष्टि-हित की भावना को दबा दिया है।

भारत आध्यात्मिक देश रहा है। इस भूमि पर, समय समय पर, अनेक ऋषि-महर्षि, संत, साधु, धर्म प्रसारक हुए हैं जिन्होंने कहा है कि मानव की विजय भौतिक उपलब्धियों में नहीं है बल्कि आत्मिक उन्नति में है। उन्होंने यह भी कहा है कि यह दुनियां एक माया जाल है। इसमें जो कमलवत् रहेगा, वह वास्तविक सुख और शांति पायेगा, जो उसके दलदल में फँसेगा, वह आजीवन भटकता रहेगा। पश्चिमी सभ्यता ने हमें और हमारे समाज को भौतिकता प्रेमी बना दिया है मनुष्य की सफलता जबकि एक समय में उसकी आत्मिक उन्नति के आधार पर आंकी जाती थी, आज इस बात से आंकी जाने लगी है कि उसने कितना पाया और कमाया है? हमारी समूची दृष्टि ही बदल गई है यह निश्चित रूप से पश्चिमी सभ्यता की देन है।

आज अपनी सुरक्षा के लिए तरह तरह के [illegible] अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हो रहा है। [illegible] अकल्पनीय जन-धन की हानि देख चुके हैं। फिर भी [illegible] बादल आकाश में मंडराते दिखाई देते हैं। प्रत्येक [illegible] की तैयारी में अणुबम, हाईड्रोजन बम, [illegible] व्यवस्था कर रहा है। उनकी मान्यता है कि [illegible] की नहीं बल्कि [illegible] की होगी। धरती पर [illegible] घुड़सवार आदि अब विशेष काम के सिद्ध नहीं होंगे। [illegible] होगा, जिनके पास हाईड्रोजन अथवा [illegible] शिमा पर एक बम गिरा कि [illegible]। [illegible] हजारों वर्षों तक कराहते रहें, तो इससे क्या ?

मानव के इस संहार पर आज की [illegible] है। अपनी आतरिक दुर्बलता को छिपाने के लिए [illegible] सहारा लेने के लिए व्यक्तियों और राष्ट्रों [illegible] हैं।

लेकिन इसके विपरीत हमने देखा कि एक [illegible] व्यक्तित्व हिमालय के समान उच्च एवं दृढ़ और [illegible] भांति पवित्र था। भारत की [illegible] था। उसने अपना स्वर ऊंचा किया, [illegible] धर्म-प्रवर्तकों और मनस्वियों ने ऊंचा किया था। [illegible] उत्कृष्ट बल यदि कोई है तो [illegible] पैदा कर ले तो उसके आगे न [illegible] न हाईड्रोजन बम। उसने [illegible] और भूमि पर उसका [illegible] प्रयोग करके [illegible] नारा था,

मानवता सुखी रहे।

और उसके अस्त्र थे :

—सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, आदि ग्यारह महाव्रत।

उसने भारत को सलाह दी कि अस्त्र-शस्त्र से राज्य की रक्षा भले ही हो जाय मानवता की रक्षा कदापि नहीं हो सकती। यही बात उसने दुनियां से कही।

अपने आत्मिक बल से इस युग-पुरुष ने उस महान् साम्राज्य की जड़ उखाड़ दी जिसके विषय में कहा जाता था कि उसका विस्तार इतना अधिक है कि उस पर कभी सूर्यास्त नहीं होता।

आज संघर्ष दो विचार-धाराओं का है। एक पश्चिम से आई है और कहती है कि जीवन का वास्तविक आनन्द 'खाने-पीने, मौज उड़ाने' में है। दूसरी कहती है कि नहीं। जीवन का वास्तविक आनंद भोग में नहीं, त्याग में है, असंयम में नहीं, संयम में है, झूठ में नहीं सत्य में है, और भौतिक उपलब्धियों में नहीं, अपरिग्रह में है। पहली का प्रतीक है अणुबम और दूसरी का अणुव्रत। आज संघर्ष इन्हीं दो विचारधाराओं के बीच हो रहा है।

हमारी निश्चित धारणा है कि आत्मबल के समान दूसरा बल नहीं है। जब तक इस बल की प्राप्ति नहीं होगी, मानव सुख और शान्ति से नहीं रह सकता।

अणुव्रत और अणुव्रती संघ के प्रति मेरी अभिरुचि इसलिए रही है कि वे मानव को आत्मिक दृष्टि से सशक्त बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे मनुष्य की मानवता पर जोर देते हैं और चाहते हैं कि हम सब अपनी निगाह अपने अंदर डालें, अपने दोषों का दर्शन करें और उन्हें दूर करने की यथासम्भव चेष्टा करें। संघ के उद्देश्य हैं :—

(क) जाति, वर्ण देश और धर्म का भेदभाव न रखते हुए मानव-

मात्र को सदाचार की ओर आकृष्ट करना।

(ख) मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अचौर्य
व्रतों की उपासना का व्रती बनाना।

(ग) आध्यात्मिकता के प्रचार द्वारा म
को ऊँचा करना।

(घ) अहिंसा के प्रचार द्वारा विश्व में
करना।

मेरे विचार से ये उद्देश्य बहुत व्याप
जाना है।

अणुव्रती संघ की सबसे बड़ी विशेषता
घरबार छोड़कर 'फकीर' होने की प्रेरणा न
कि तुम व्यापारी हो, पर अपने व्यवसाय
को बढ़कर अपने जीवन को पुनीत-पावन
जीवन विशुद्ध होगा उतने ही तुम
हुए और मिट गये, वीर योद्धाओं ने
नाम इतिहास के किसी कोनेमें भले ही पड़े
लेकिन राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, म
आदि का स्मरण कर लोग धन्य होते हैं। ये
महापुरुषों का प्रभाव है और जब तक मानव
अमर रहेंगे।

आज दुनियां में जितने धर्म हैं,
कालोत्तर में, उनके रूप में अन्तर
गए हैं कि धर्मों का पालन
के रूप में किया जाता है। इस

है, पर कितने है. जो उनकी भावनाओं को समझ कर करते है। अणुव्रती संघ को एक विदेह संस्था के रूप में रखा गया है और यह शुभ है। कारण कि विधि-विधान, नियम-उपनियम में बँध कर अधिकांश संस्थायें निर्जीव हो जाती है। उनके आगे नियमादिक का पालन इतना आवश्यक और महत्व का हो जाता है कि मूल भावना उनके हाथ से निकल जाती है। अणुव्रती सघ को इससे उन्मुक्त रखकर उसके सयोजकों ने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया है पर अन्य धर्मों के जिस दोष का हमने ऊपर उल्लेख किया है, उससे इस संघ को भी बचाना होगा। जो भी नियमादि रक्खे गये है, उनका विवेकपूर्वक पालन हो, रूढ़ि के रूप में नहीं। ऐसा एक भी 'व्रती' मिल गया तो वह एक लाख के बराबर होगा और वह अणुव्रती संघ की ध्वजा को ऊँचा रक्खेगा।



भारतीय संस्कृति तथा अणुव्रत-संघ

—रामकृष्ण शास्त्री [illegible]

आज विश्व में अशांति तथा [illegible] है। मानव-समाज गत दो महायुद्धों की विभीषिकाओं से [illegible] वह तृतीय महायुद्ध की आशंका से ही [illegible] वह जानता है कि यदि तीसरा महायुद्ध [illegible] इतना ध्वंस और नाश होगा कि मानवता [illegible] पड़ेगी। कोरिया के युद्ध में कितनी [illegible] का विषय है।

संसार के बड़े बड़े राष्ट्र प्रयत्नशील हैं कि [illegible] जाए। विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न शान्ति [illegible] के नारे भी यत्र-तत्र लगाये जा रहे हैं, किन्तु शान्ति [illegible] वाली नहीं। इसके लिए तो [illegible] आवश्यकता है। आज का जन-जीवन [illegible] हो चुका है कि हमारे प्रत्येक कार्य में [illegible]

भारतीय संस्कृति [illegible] से व्याप्त है। हमारे धर्म-शास्त्रों के [illegible] यह भी है 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' [illegible] ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए [illegible] सकता।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मित्रता ही मनुष्य का धर्म है। शास्त्रों में कहा है–'दृते दृन्हमा मित्रस्य मा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुणासर्वाणि भूतानि समीक्षामहे–' अर्थात् संसार के सब प्राणी एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। मैं तथा हम सब मित्र की दृष्टि से सबको देखें।

मित्रता की भावना के लिए विश्वास की भावना आवश्यक है। जब तक मनुष्य का व्यवहार अन्य लोगों के साथ विश्वासपूर्ण नहीं, तब तक मित्रता नहीं हो सकती। मित्रता के लिए संकोच, कायरता तथा भय की भावना घातक है। इसीलिए उपासक तथा साधक सदा निर्भय होने की कामना करते हुए वर मांगता है:—'अभयं मित्रादभयममित्रा-दभयं ज्ञातादभयं परोय:। अभयं न मभयं रिवान. सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।' अर्थात् मुझे मित्र, अमित्र, परिचित अथवा अपरिचित इन सबसे निर्भयता हो। यहाँ तक कि दिन और रात भी मेरे लिए निर्भयता का वरदान देनेवाले हों। यही नहीं, मनुष्य दिशाओं तक से निर्भयता का वरदान माँगते हुए कहता है—'अभय नः करन्यन्त-रिक्षाभयं द्यावा-पृथ्वी उभे हमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादभयं-मुत्तरादधरादभयं नोऽस्तु, अर्थात् हमें अन्तरिक्ष (आकाश) द्युलोक, पृथ्वी लोक से अभय का वरदान मिले। यहाँ तक कि सब दिशायें भी मेरे लिए निर्भयता का सन्देश दें। पीछे, आगे, ऊपर तथा नीचे-सब ओर से हमें निर्भय होने का ही वर मिले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ पश्चिम अन्धाधुन्ध भौतिकता की ओर बढ़ रहा है और मानव होते हुए भी अपने कार्यों से दानव बनने का प्रयत्न कर रहा है, वहाँ पूर्व के शास्त्र हमें–मानवमात्र को-'मनुर्भव' के अनुसार– मानव बनने का–संदेश देते हैं। आज का सबसे बड़ा दम्भ

और अभिशाप यही है कि हमारे [illegible] आदर्श [illegible],
किन्तु वास्तव में हम मानव कहलाने [illegible] अधिकारी नहीं [illegible]।
जीवन का आदर्श तो यह था कि हम मानव [illegible]
वान बनें, किन्तु आज हमने इसकी [illegible]
है कि हमारा जीवन [illegible] को दौड़ में किसी [illegible] के पीछे [illegible] है।
आज हमारा जीवन [illegible] के समान निर्जीव [illegible]
सारा दिन परिश्रम करके [illegible]
करते हैं।

गान्धीजी ने हमारा ध्यान नैतिकता [illegible]
उनके जीवन के एक एक कार्य में [illegible],
[illegible] नैतिकता की पवित्र भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। [illegible]
पश्चिमी विद्वान भारतीय सभ्यता की [illegible]
यशोगान करते हुए नहीं [illegible]।

[illegible] को [illegible] याद हमें दिलाई। भारतीय [illegible]
[illegible] है। मनुस्मृति के अनुसार— [illegible],
[illegible]

[illegible]

[illegible] बुद्धिमान [illegible]
[illegible] नियमः [illegible]
[illegible]
[illegible]

उक्त यम पाँच बताये गये हैं और नियम भी पाँच ही हैं :—

पाँच यम इस प्रकार है :—तत्राहिंसा सत्यास्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहा-यमाः। (योग साधन पादे सू० ३०)

अर्थात् अहिंसा (वैर त्याग), सत्य (सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना), अस्तेय अर्थात् मन, वचन, कर्म से चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, अपरिग्रह अर्थात् अत्यन्त अलोलुपता स्वत्वाभिमान रहित होना—इन पाँच यमों का सेवन मनुष्य को अवश्य करना चाहिए।

इसी प्रकार नियम भी पाँच बताये गये :—शौच, सन्तोष, तपः स्वध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमः। (योग साधन पादे सू० ३२)
अर्थात् शौच (स्नानादि से पवित्रता,)सन्तोष- सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना संतोष नहीं, किन्तु पुरुषार्थ जितना सके उतना करना, हानि-लाभ में हर्ष या शोक न करना, तप अर्थात् कष्ट सेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान, स्वाध्याय-पढ़ना पढ़ाना, ईश्वर प्राणिधान-ईश्वर की भक्ति विशेष से आत्मा को अर्पित रखना—ये पाँच नियम कहलाते हैं।

इस प्रकार शास्त्र की मर्यादा के अनुसार आचार्य श्री तुलसी ने द्वितीय महायुद्ध के परिणाम स्वरूप तथा देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बढ़ती हुई अनैतिकता, चोर बाजारी तथा रिश्वत को देखकर अपना कर्त्तव्य समझा कि वे एक बार फिर से मानवता का आह्वान करें और उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करें। दो तीन वर्ष पूर्व वे दिल्ली पधारे और उन्होंने राजधानी की जनता को तथा उनके माध्यम से देश तथा विदेश की जनता को उनके कर्त्तव्य से परिचित कराया। पांच यमों अर्थात् महाव्रतों के आधार पर उन्होंने जैन शास्त्रानुकूल अणुव्रतों के लिए मानवता को पुकारा। महाव्रतो तथा अणुव्रतो को

समझाते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि इन व्रतों के लिए [illegible]
रूप से जन-साधारण के लिए महाव्रतों का [illegible]
नहीं। इसलिए वे उनके जितने भी अंश [illegible]
प्रयत्न वे करने में कभी न चूकें। साधना [illegible]
उसके लिए निरन्तर कष्ट और तपस्याकी [illegible]
रिक साधकों के लिए आचार्य श्री तुलसी ने [illegible]
बनाते हुए चौरासी नियमोपनियमों का [illegible]
करने में सभी साधक प्रयत्नशील रहे हैं।

अणुव्रती संघ तथा उसकी विचारधारा [illegible]
विदेश में उत्साहजनक प्रतिक्रिया हुई, [illegible]
प्राप्त किया जा सकता है। आज [illegible]
कि हम आत्म-निरीक्षण तथा साधना के [illegible]
प्रस्तुत करें। जब तक जन जीवन में [illegible]
उन्नत नहीं होगी, तब तक उद्देश्य में सफलता [illegible]
नहीं है। जब तक हमारा नैतिक स्तर ऊँचा नहीं होगा, [illegible]
का स्तर उन्नत नहीं हो सकता। यह ठीक है कि [illegible]
अन्य सब प्रश्नों को परास्त कर लिया है, और [illegible]
'सम्पत्ति' के अनुसार सभी समस्यायें आर्थिक [illegible]
रह गई हैं, किन्तु पैसे की होड़ में हमने [illegible]
गया है कि हमारा पारिवारिक तथा सामाजिक [illegible]
से अछूता नहीं रह गया है। प्राचीन [illegible]
सामाजिक कुरीतियाँ तथा [illegible]
मानव प्रगतिशील दृष्टिकोण के [illegible]
जातिवाद की नींव को [illegible]
प्रयत्न निरन्तर रहे हुए हैं [illegible]

ओर दृष्टि लगाये बैठा है। एशिया जाग रहा है। योरूप के बंधन से एशिया के छोटे छोटे देश मुक्त होते जा रहे हैं और इस बात की आशा है कि योरूप का पारस्परिक गुटबन्दी का वातावरण उसे एक ऐसे गर्त में धकेलेगा कि मानव का पुनर्निर्माण होगा। अमरीका के कारखानों में दिन प्रतिदिन बनती हुई युद्ध-सामग्री तथा उसका व्यापारिक दृष्टिकोण उसे युद्ध के सपने देखने को विवश करते रहते हैं। जब तक हमारे मनों में आशंका, संदेह तथा अविश्वास का वातावरण बना रहेगा, तब तक हम एक राष्ट्र-संघ नहीं, अनेकों ऐसे संघ बना लें, तो भी मानवता का कुछ कल्याण होने वाला नहीं। प्रत्येक विवाद ग्रस्त प्रश्न का निबटारा जबतक दलबन्दी के आधार पर होगा, तब तक हम अन्धेरे में ही ठोकरें खाते रहेंगे। इसलिए हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर चलने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा मृतं गमय' अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो। हमें निराशावादिता को छोड़कर आशा का संबल लेकर चलना है। मार्ग की उलझनें तथा संकट हमें हमारे नव-निर्माण के लिए प्रयत्नशील करें यही हमारी हार्दिक भावना और इच्छा होनी चाहिए।



अणुव्रत समाज-शुद्धि का आन्दोलन

—श्री [illegible]

(सं० सम्पादक '[illegible]')

काल प्रवाह के साथ समाज में अनेक बुराइयां [illegible] हैं। प्रत्येक युग में इन बुराइयों से समाज को मुक्त [illegible] होता आया है। समाज संशोधन का यह कार्य निरन्तर [illegible] चाहिए, अन्यथा समाज में विषमता, अव्यवस्था, [illegible] पैदा हो जायेगी, उसकी प्रगति का मार्ग [illegible]।

समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है और [illegible] का संशोधन अभीष्ट हो तो उनकी [illegible] चाहिए। व्यक्ति समाज में रहता है और [illegible] किसी न किसी रूप से समाज को प्रभावित [illegible] रहते हुए स्वेच्छाचारी जीवन नहीं [illegible]। व्यक्तिगत आचरण इस प्रकार नियन्त्रित [illegible] का अनिष्ट न हो।

व्यक्ति और समाज अभिन्न हैं। एक दूसरे [illegible] विरोध नहीं है। क्या व्यक्ति को समाज [illegible] जाना चाहिए, यह प्रश्न ही नहीं उठता। [illegible] हैं, किन्तु उनके लिए सामाजिक नियमों [illegible] शुद्ध सामाजिक वातावरण में ही व्यक्ति का [illegible]

हो सकेगा। इसलिए व्यक्ति को आत्म-विकास के लिए भी सामाजिक वातावरण को अच्छा बनाने में योग देना चाहिए।

हमारे पूर्वजों ने गहरे चिन्तन और अनुशीलन के बाद मनुष्य के आचार के लिए कुछ मूलभूत नियम निर्धारित किये हैं। ये नियम भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं। इस देश में सदियों से मनुष्य जाति को यह पाठ सिखाया जाता रहा है कि उसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना चाहिए। भारत की भूमि में जितने भी धर्म पनपे है, उन सबने इन मूलभूत सिद्धांतो पर बल दिया है। उनका अनुसरण व्यक्ति और समाज दोनो के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

किन्तु इन नियमो का पालन आसान नही है। यह खांडे की धार पर चलने जैसा है। अहिंसा का पालन करने वाला, मनुष्य मात्र के प्रति ही नहीं, बल्कि संसार के सब जीवो के प्रति प्रेम और करुणा से बरतेगा। वह राग और द्वेष से मुक्त होगा। सत्य बोलने से सांसारिक दृष्टि से हानि हो सकती है, यह समझ कर भी वह सत्य का परित्याग नही करेगा। वह दूसरे का धन हड़पने की चेष्टा नही करेगा। वह सांसारिक भोग-विलास को जीवन का परम लक्ष्य नहीं समझेगा, बल्कि संयम से काम लेगा। इन्द्रियो के वशीभूत न होकर उन्हें अपने वश में रखेगा, वह अपनी इच्छाओ और आवश्यकताओं को सीमित रखेगा। धन-सम्पत्ति का एक जगह संचय दूसरी जगह अभाव की स्थिति उत्पन्न करता है। अमीरी और गरीबी का एक साथ अस्तित्व वर्तमान अशांति का मूल कारण है और उसे अपरिग्रह की भावना से ही शान्त किया जा सकता है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह भी एक प्रकार से सामाजिक चोरी ही मानी जानी चाहिए। अगर समाज में इस

नियमों पर चलनेवाले लोग अधिक मात्रा में हों तो इस [illegible] स्वर्ग उतर आ सकता है।

तेरापंथी सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी जी से [illegible] मुझे अवसर मिला है। उन्होंने अणुव्रती आन्दोलन का [illegible] किया है, जिसे मैं समाज संशोधन का ही एक रूप समझता हूँ। उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच मूलभूत [illegible] की आधारशिला पर अणुव्रत-आन्दोलन को खड़ा किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने कुछ ऐसे नियम निर्धारित किये हैं जिनके [illegible] से समाज और व्यक्ति के जीवन में नैतिकता और सदाचार की वृद्धि होगी और राष्ट्र का गिरा हुआ चरित्र ऊँचा उठेगा।

आचार्य श्री तुलसी जी ने आज की परिस्थितियों का [illegible] हुए अणुव्रती नियमों को व्यवहारोपयोगी बनाने की [illegible] है। इसलिए उन्होंने इन नियमों को अणुव्रत अर्थात् लघु [illegible] दिया है। किन्तु अणु में शक्ति का कितना [illegible] है, [illegible] जान चुका है। अणुव्रत दिखने में भले ही छोटे दिखाई दें, [illegible] मनुष्य के जीवन और दृष्टिकोण में [illegible] नाएँ छिपी हैं। इसलिए अणुव्रत लघु हैं, [illegible] महत्त्व कम नहीं आंकना चाहिये।

अणुव्रत आन्दोलन आज की अनेक सामाजिक बुराइयों को दूर [illegible] सकता है। आज व्यापारिक क्षेत्र में मिलावट, [illegible] बाजार प्रविष्ट हो गया है। [illegible] गया है। रिश्वतखोरी और चोरबाजारी का [illegible] है। [illegible] दहेज, बाल और वृद्ध-विवाह जैसी [illegible] प्रचलित हैं। शराबखोरी, जुआबाजी, [illegible]

दुर्व्यसन घर किये हुए हैं। अणुव्रत आन्दोलन इन सब बुराइयो का निषेध करता है। वह छूआछूत का समर्थन नही करता और स्वदेशी का पोषक है। इन सबके लिए प्रत्येक समझदार आदमी इस आन्दोलन का समर्थन करेगा।

इस आन्दोलन ने अनेक व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित किया है। उन्होने आर्थिक हानि उठाकर भी अणुव्रतों का पालन किया है। व्रत का अर्थ ही दृढ़ सकल्प होता है। जो लोग धर्म और नीति की सीधी राह पर चलने का सकल्प करते है, शुरू में भले ही उनकी सख्या थोड़ी हो सकती है, किन्तु उनका जीवन दूसरो के लिए प्रकाश का काम देता है। अन्त में उनकी श्रद्धा फलेगी-फूलेगी और यह दुनियाँ आज से अधिक अच्छी जगह बन कर रहेगी।



Anuvrati Sangh

—Shri Pattabhi [illegible]

Any organisation that avows cert[illegible] fund[illegible] mental principles of purity and [illegible] is bound to promote the well-be[illegible] and improve its ethics. The Anu[illegible] ment has evolved 85 Rules [illegible] under five heads, namely [illegible] Asteya, Brahmacharya and A[illegible] are the cordinal principles of [illegible] the principles which Mahatma G[illegible] In his campaigns of politic[illegible] ethical reform. Such a moveme[illegible] to command the goodwill and [illegible] every wellwisher of society.

—[illegible]—

भारतीय संस्कृति में अणुव्रत-शृंखला

—मुनि श्री शुभकरणजी

संस्कृति क्या है ?

संस्कृति शब्द नया है, अणुव्रत शब्द प्राचीन है और अणुव्रती संघ नया है। नये और पुराने की परख करनी है। नया सभी अच्छा होता है, पुराना नहीं, यह बात नहीं। अच्छा सदा अच्छा ही होता है और बुरा सदा बुरा ही। अच्छा किसी देश, क्षेत्र और काल में बुरा नहीं बन सकता और बुरा अच्छा नही। अच्छाई की बुराई से और बुराई की अच्छाई से कभी नहीं पटी और पटेगी।

सबसे पहले संस्कृति के पहलु पर समालोचना करें। पुराने जमाने में इसका पूरक शब्द कौन सा था, यह आज के अर्थ सापेक्ष है। आज इसका अर्थ क्या है ? यह कहां रूढ़ है ? किसका अभिव्यंजक है ? व्यंग और व्यंज का तादात्म्य सम्बन्ध है। व्यंगाभाव में क्या व्यंजक है और व्यंजकाभाव में क्या व्यंग ? दोनो एक दूसरे के पूरक है।

एक शब्द देश, काल आदि की विभिन्नताओ से अनेक अर्थों का परिद्योतक बनता है। संस्कृति एक होती हुई भी विभन्नता की परिद्योतक बनी, इसका कारण है कि लोगों ने अपने प्रत्येक कार्य को संस्कृति का चोला पहना दिया। जैसे यह जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, वैदिक संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति आदि २। अमुक कार्य ऐसा क्यो ? इसका उत्तर होगा हमारी संस्कृति है।

यह संस्कृति का बाह्य रूप है, [illegible]
है। रीति सबकी समान हो नहीं सकती। [illegible]

संस्कृति का दूसरा रूप है आध्यात्मिक [illegible]
से दूर है। वह अपनी अजर आत्मा के नजदीक है। [illegible]
में विभेद नहीं हो सकता। [illegible]
का रूप यहां आकर अखण्ड बन जाता है। [illegible]
खाई अपने आप पट जाती है। [illegible]
और दूसरी आत्म भाव संस्कृति। [illegible]
रिक भाव संस्कृति धर्म है। [illegible]
बन गये हैं। जो सद्‌विचारों [illegible]
'संस्कृति' मान लिया गया। [illegible]
के अनुसार संस्कृति गांधी है, [illegible]
तुलसी, सूर, ज्ञानदेव, नरसी, तुकाराम [illegible]
मुनि आचार्य तुलसी है, [illegible]
देखने की कोई बात नहीं। [illegible]
वशीकरण, संस्कृति है भाव [illegible]।'

भारतीय संस्कृति [illegible]
का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। [illegible]
व्याख्याओं में भी दो मत नहीं। [illegible]
है। विरोध में न जाकर हम [illegible]
है। साम्य में कोई अन्तर नहीं, [illegible]
साम्य के रहते हुए [illegible]
यह उनमें [illegible]
पर एक सरसरी दृष्टि [illegible]।

[illegible] है—[illegible]
[illegible] जीवन। [illegible]

होते हैं, उनमें स्थूल सूक्ष्म का कोई अन्तर नहीं। अणुव्रत स्थूल होते हैं। धर्म एक है– दोनों धर्म के दो पहलू हैं। एक पूर्ण है दूसरा अपूर्ण है। भगवान् महावीर ने कहा है—धर्म दो प्रकार का है–एक आगार-मर्यादित धर्म और दूसरा अणगार धर्म। आचार्य भिक्षु ने कहा—

'साधु नैं श्रावक रत्नांरी माला, एक मोटी बीजी नान्ही'

अणुव्रत की चर्चा दिगम्बर और श्वेतांबर दोनों सम्प्रदाय में एक रूप से मिलती है। आदि पुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन है, जो बड़े प्रभावक माने गये है, वे लिखते है—'ये पांच अणुव्रत गृहस्थो के लिए महान् फलदायक हैं[1]। दुर्गति के अवरोधक और स्वर्ग के सोपान[2] हैं। अणुव्रत गृहस्थ जीवन में रमे हुए व्यक्तियों की शुद्धि का परम प्रकर्ष रूप है। नैतिकता और निष्कपटता का मूलमंत्र है। आदि पुराण की एक घटना से अणुव्रत-शृखला कितनी प्राचीन है यह स्वयं अवगत हो जायगी। इसके साथ साथ एक नई दृष्टि भी देगी। सृष्टि की उत्पत्ति के पीछे जैन दर्शन की एक वैज्ञानिक और मननीय कल्पना है।

भगवान् ऋषभदेव आध्यात्मिक व्यवस्था और भौतिक व्यवस्था के आदि कर्त्ता हुए। वर्ण-व्यवस्था का स्रोत उनकी प्रेरणात्मक प्रतिभा से चला। उनसे पहले कोई व्यवस्था नहीं थी। लौकिक व्यवहार अव्याबाध चले, इसलिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण स्थापित किए। चतुर्थ वर्ण की स्थापना का श्रेय भरत को है। भगवान् ऋषभदेव मुनि बने। भरत ने राज्य भार संभाला, उस समय जो अणुव्रती थे, अध्ययन और अध्यापन जिनका कार्य था, भोग-सामग्री से मुक्त रहना चाहते थे उनको ब्राह्मण संज्ञा दी।

---

(१) महोदर्काण्यगारिणाम्—महा१० । १६४।

(२) स्वर्ग सौधस्य सोपानां विधानमपिदुर्गतेः–महा१० । १६५

स्वयं भरत ने भगवान ऋषभदेव के [illegible] द्वारा निर्दिष्ट उपासक, गुणानुसार [illegible] को ब्राह्मण बना दी है, उनसे [illegible] ब्राह्मण वर्ग का इतिहास अपना [illegible] ।

श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्टि [illegible] भी एक दृष्टि डालें । दोनों के विचार [illegible] संस्कृति में जो 'श्रावक' शब्द आया [illegible] आज भी जो श्रावक कहलाते हैं उनसे [illegible] जिनकी मर्यादा होती है । निशीथ सूत्र की चूर्णि [illegible] अणुव्रत स्वीकृत हैं वे श्रावक हैं।'

भरत ने भी तात्कालिक श्रावकों को [illegible] आप मेरे यहां रहें, अध्ययन, अध्यापन, [illegible] कुछ उपदेश दें ।

वे निरन्तर जाते और ऐसा कहते 'राजन् [illegible] बढ़ रहा है, इसलिए किसी को मत मारो, [illegible] आध्यात्मिकता का और संसार [illegible] दिन इस चिन्ता में डूब गये [illegible] कैसा बढ़ रहा है ?' सोचते २ उन्हें [illegible]

१—मयः सृष्टा द्विजन्मानः [illegible] ।
स्वगोत्रोचितकाध्याय [illegible] ॥
—महापुराण ४१ श्लोक [illegible]

२—श्रावका गृहिणाणुव्रता [illegible]

३—जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मान् [illegible]

सारभूत निधि को पा लिया। वह थी 'अरे ! मैं कषायों[1]–क्रोध, मान, माया, लोभ आदि से पराजित हूँ, प्रताड़ित हूँ और इन्ही का सर्वत्र भय बढ़ रहा है। इसलिए मुझे किसी को नही मारना चाहिए।' 'इसमें मत मारो' शब्द का महत्त्व कुछ विशिष्ट है। संस्कृत में इसका रूप बनता है 'माहन।' यह 'माहन' शब्द ही आगे चलकर ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हुआ—'क्रमेण माहना स्ते ब्राह्मणा इति विश्रुताः।' अनुयोगद्वार और ज्ञाता सूत्र की टीका आदि में भी यह स्पष्ट है कि 'भरतकाल में जो श्रावक थे वे ही आगे चलकर ब्राह्मण[2] बने'। ब्राह्मी और सुन्दरी भगवान् ऋषभदेव की दो पुत्रियां थीं। ब्राह्मी के दीक्षित होने पर भरत स्वयं श्रावक[3] बने, ऐसा आवश्यक टीकाकार मलय गिरि ने लिखा है। भगवान् महावीर के समय के रोमांचकारी कष्टो से परिपूर्ण अणुव्रतियों की कथायें हृदय को झकझोर देती है। उपासक दशांग सूत्र में ११ श्रावको का जीता जागता एक अभिनव चित्रण है, जिसमें अणुव्रतो का बड़ा विस्तृत विवेचन मिलता है। स्थानांग सूत्र में पांच अणुव्रतो का उल्लेख है।

भगवान् महावीर के माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ के श्रावक थे। "समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापितरो पासावचिज्जा" 'पासाव चिज्जा' शब्द का अर्थ है पार्श्वनाथके अपत्य-शिष्य। कल्पसूत्र में भगवान् पार्श्वनाथ के श्रावकों की गणना लाखों में पहुँचती है। और भी अनेक

१—जितोस्मि केन हु ज्ञातं कषायैर्वर्द्धते च भीः।
कुतो मे तेभ्य एवेति मा हन्यां प्राणिनसततः॥ २३२।

२—श्रावका ब्राह्मणा। प्रथमं भरतादिकालेश्रावकाणामेवसतां पश्चाद ब्राह्मणत्वभवतात्—अनु० ज्ञा०

३—वमीपव्वइया भरहो सावगोजाओ—आव० म० १ अ०

ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। फलितार्थ [illegible] आज तक जैन परम्परा में [illegible] और [illegible] में रहेगी।

वैदिक संस्कृति [illegible]

जैन-दर्शन की इस [illegible] के साथ-साथ [illegible] संस्कृति में मर्यादा-क्रम का पता [illegible] अहिंसा में दोनों का पूरा विश्वास है। [illegible] प्रेत है। नयमपूर्वक जीना [illegible] ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम हैं।[1] [illegible] गता मिलती है। जैसे—'महाव्रत यम'। ये [illegible], [illegible] समय आदि से सीमित न होकर [illegible] हैं। [illegible] है। योग सूत्रकार ने भी पूर्ण [illegible] इससे यह सहज उभरता है कि जहां जाति, देश, [illegible] है वहां पूर्ण अहिंसा नहीं [illegible] जाति आदि द्वारा सीमित-मर्यादित [illegible] जैसे—देश-सीमित 'तीर्थ-स्थान में [illegible] काल' द्वारा सीमित है। 'मैं चतुर्दशी [illegible] प्राणी को नहीं मारूंगा'। और, [illegible]

१—अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। २।३०।

२—जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः [illegible] । ३१।

३—[illegible]

४—[illegible]

प्राणिधान के नियम हैं।" नियम यमपूर्वक फलित होते हैं केवल नियमों का मूल्य नगण्य है। इसको परखे-ऐसा कहने का तात्पर्य है—यम के प्रति अधिक झुकाव-बल देना। एकान्ततः ऐसा स्वीकार नहीं कर सकते कि जीवन में नियम का मूल्य नहीं। यम पूर्णतः सबको ग्राह्य नहीं हो सकते यम का आंशिक रूप व्यक्ति में उतरा और उतरता रहेगा। 'धर्म का आचरण करो, सत्य बोलो, हिंसा मत करो।' ये शिक्षात्मक वाक्य क्या है? मर्यादा ही है। वर्णाश्रम की व्यवस्था संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करने की मर्यादा का ही एक रूप है।

संयम का स्रोत मनु स्मृति में, गीता में किस प्रकार फूट रहा है वह अवश्य ज्ञेय है। 'विषयों में भटकती हुई इन्द्रियों का दमन करो, संयम में प्रयत्नशील रहो।' जिसके मन, वचन, सम्यग् शुद्ध है वही वेदान्तोगत फल पा सकता है। गीता का स्थित प्रज्ञाधर्म किस उन्नत भूमिका पर आश्रित है। योग दर्शन की १४ भूमिकायें शुद्धि का एक मार्ग प्रस्तुत करती हैं। जैन संस्कृति में १४ भूमिकाओं के स्थान पर १४ गुण स्थान हैं जो क्रमशः अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर करते हैं। इन सबसे साफ प्रतीत होता है कि मर्यादा का भी जीवन में एक मूल्य है। मर्यादित जीवन उन्नत जीवन है। जैन संस्कृति में सीमा-मर्यादा का नाम अणुव्रत है।

बौद्ध साहित्य में श्रावक शब्द

बौद्ध संस्कृति में जहाँ श्रमण, भिक्षु, मुनि, साधु, स्थविर आदि शब्द उल्लिखित हैं वहाँ श्रावक शब्द का भी उल्लेख आता है। बौद्ध की दृष्टि में श्रावक वह है जो बौद्ध के मार्ग का अनुगमन करे। सम्यक् संबुद्ध श्रावक तृष्णा क्षय में रत रहता है। ब्रह्मचर्य की मर्यादा के सम्बन्ध में

लिखा है[1] 'परदार सेवी मनुष्य की चार गतियाँ हैं— [illegible], सुख से न सोना, निन्दा और नरक। अतः [illegible] नहीं [illegible] चाहिए' यह मर्यादा जिसके लिए है, [illegible] परित्यक्त है। उसके न स्व स्त्री है और न कोई [illegible]। [illegible] लिए ही ऐसा कहा गया है।

अणु शब्द का उल्लेख भी आता है—श्रमण कौन [illegible] वाणी बतलाती है—'जो अणु-स्थूल और [illegible] शमन करता है वह श्रमण है'[2] [illegible] इसी मर्यादा का एक रूप सामने [illegible] है। [illegible] नहीं सकता, उसे मजबूरन [illegible] यथासाध्य है। यथाशक्ति मर्यादा और [illegible] इस प्रकार भारतीय संस्कृति ने [illegible] प्रकाश डाला, वहाँ अपूर्णता की ओर भी [illegible] यह है कि गृहस्थ जीवन में भी [illegible] ओर बढ़ सकता है। आत्म [illegible] धर्म भारतीय संस्कृति की आत्मा है। [illegible] सर्वांगीण दोनों पक्षों पर बल दिया [illegible] सार्वभौम महाव्रत है। भारतीय संस्कृति [illegible] है वहाँ अणुव्रत को भी पूरी [illegible]।

१—चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो, [illegible]

अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं [illegible]

२—यो च समेति पापानि [illegible]।

समितत्ता हि पापानं [illegible]॥ [illegible]

'अणुव्रती-संघ' आचार्य श्री तुलसी की अनुपम सूझ है। जिसका उद्देश्य चारित्र-निर्माण और आत्म-नियमन करना है। भौतिकता से चौंधियाई आँखों के लिए यह एक अभिनव प्रकाश-पुञ्ज है, जिसकी भित्ति आध्यात्मिकता है, हृदय परिवर्तन के साथ जो अग्रसर होता है और होता रहेगा।

अणुव्रत एक महत्वपूर्ण आन्दोलन

श्री [illegible]

([illegible])

योगिराज श्री कृष्ण ने [illegible] एक स्थान पर कहा था—

> यदा यदा हि धर्मस्य [illegible]
> अभ्युत्थानम् धर्मस्य [illegible]।
> परित्राणाय साधूना [illegible]
> धर्म संस्थापनार्थाय [illegible] युगे ॥

उनके इस वचन की [illegible] होती है। बुद्ध, महावीर, [illegible] गुरु नानक, स्वामी दयानन्द [illegible] महात्मा गांधी [illegible] देश में व्याप्त विषम परिस्थितियों और [illegible] उनके कार्यकलाप उनकी [illegible] है उनके अवतरण की [illegible]। [illegible] बुद्ध और महावीर का, [illegible] सामाजिक [illegible] में [illegible], [illegible] भारतीय [illegible]

काल में ऋषि दयानन्द का और दासता के अभिशापजन्य चतुर्दिक पतन काल में महात्मा गांधी का अवतरण ऐसी घटनायें है, जो प्रकृति की सुयोजित योजना का अग प्रतीत होती है।

महापुरुषों की शृंखला की कड़ी के रूप में आज एक ओर आचार्य विनोवा और दूसरी ओर जैनाचार्य तुलसी हमारे सामने विद्यमान है। महात्मा गांधी ने अपनी तपस्या एव सत्य और अहिसा के बल से देश को दासता के बन्धन से मुक्त कराया किन्तु शोपण और दरिद्रता के अभिशाप से मुक्ति दिलाकर रामराज्य स्थापित करने की अपनी कल्पना को वे साकार रूप नही दे पाये। उनके अधूरे छूटे इस काम को आचार्य विनोवा ने भूदान के रूप में अपने हाथ में लेकर उनकी पूर्ति करने के लिए अपने प्राणो की बाजी लगा दी है। जिस समय महात्मा गाधी ने चुटकी भर मिट्टी से नमक बनाकर शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता को चुनौती दी थी, तो लोगो ने इसका मजाक उड़ाया था। लेकिन हम आज देख रहे है कि ब्रिटिश साम्राज्य यहाँ से गायब है और मजाक उड़ाने वाले स्वयं मजाक के शिकार बन गये है। इसी प्रकार आचार्य विनोवा के भूदान की कल्पना को लोगो ने एक सर्वथा अव्यावहारिक कल्पना की सज्ञा दी थी। लेकिन वह अव्यावहारिक कल्पना आज जिस प्रकार साकार मूर्त्त धारण कर रही है और देश का सारा वातावरण आज भूदान के साथ ही सम्पत्ति दान, कूप दान और श्रम दान आदि से जिस प्रकार व्याप्त हो रहा है, उससे उनके लक्ष्य की पूर्ति में शंका की कोई गुजायश नही रह जाती।

दूसरी ओर इसी के समानान्तर आचार्य तुलसी का नैतिक उत्थान का आन्दोलन है। यद्यपि हम आजाद हो गये है, किंतु सदियो की दासता और उससे भी बढ़कर पिछले महायुद्ध जन्य परिस्थियो से देश

में अनैतिकता का इतना जोर बढ गया है कि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो इससे बचा हो। आज लोगों के लिए पैसा ही परमेश्वर हो गया है, उसके लिए जघन्य से जघन्य अपराध करना एक मामूली सी बात हो गई है। सरकारी दफ्तरो में मामूली से मामूली काम बिना रिश्वत दिये पूरा नही हो पाता। लेने वालों के मन में तो इसका कोई भय है ही नही, देने वाले भी इसके अभ्यासी के समान एक सामान्य चीज मानने लग गये है और हमारी सरकार के भ्रष्टाचार निवारण के प्रयत्नो को सफलता नही मिल पा रही है। जो बात सरकारी विधानो में है वही सामान्य व्यापार व्यवसाय में है। देश में किसी भी चीज का शुद्ध रूप में मिलना असम्भव प्राय हो गया है। और तो और औषध जैसी चीजो में भी मिलावट कर लोगों के जीवन से साथ खिल-वाड करने में उनको हिचकिचाहट नही होती। पहले प्राय: शहर ही बुराइयो का केन्द्र माने जाते थे किन्तु अब तो गांव भी इनसे अछूते नही बचे है। सीधी सादी ग्रामीण महिलायें तक जमाये हुए तेल (वन-स्पति) को दूध के साथ जमाकर उसे शुद्ध घी के रूप में परिवर्तित करने में इतनी निपुण हो गई है कि उस घी का शुद्ध-अशुद्ध की जांच के लिए बनी मशीनो की पकड में लाना कठिन हो जाता है। और इस सर्वथा अनैतिक व्यापार को वे इतने निःडर भाव से करती है कि उसमें निहित अनैतिकता का उनके हृदय को जरा भी आभास नही होता। यह अवस्था आज सभी क्षेत्रो में है, और हालत भी अत्यन्त चिन्तनीय है।

जबतक किसी व्यक्ति में बुराई को बुराई मानने की चेतना बनी रहती है तब तक उससे यह आशा रहती है कि अपनी कमजोरी पर हावी आते ही उस बुराई से वह अपना पीछा छुडा लेगा। लेकिन जब असद् को असद् मानने की भावना ही लुप्त हो जाये तो वह एक भयावह स्थिति हो जाती है। उसमें उसके उद्धार की सम्भावना नहीं

प्रायः हो जाती है। दुर्भाग्य से नैतिकता की दृष्टि से आज हमारे समाज की बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति है। और कोई भी राष्ट्र, जिसकी नैतिक आधार शिला कमजोर हो अन्य क्षेत्रो में कितनी भी उन्नति करने पर अन्ततः वह टिक नही सकता। ऐसी दशा में देश में नैतिकता की भावना जागृत कर इसको अपने जीवन में व्यवहृत करने के लिए आरंभ किए गये इस आचार्य तुलसी के अणुव्रत आन्दोलन का भारी महत्व है। आचार्य श्री के बहुसंख्यक अनुयायी देश भर में फैलकर विविध क्षेत्रों में इस आन्दोलन का प्रचार कर रहे है और उसमें उन्हें काफी सफलता भी मिल रही बताई जाती है किन्तु वह प्रचार अबभी बहुत सीमित है। अपने देश के नैतिक उत्थान में विश्वास रखने वाले देश के प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति को बिना किसी जाति एवं धर्म के भेद भाव के इस आन्दोलन को अपनाकर उसकी पूर्ति में योग देना अपना पुनीत कर्तव्य समझना चाहिए तभी वह व्यापक रूप धारण कर सकेगा और तभी उसकी लक्ष्य सिद्धि सम्भव हो सकेगी।



विश्वशान्ति और अणुव्रत

—मुनिश्री [illegible]

गत दो महासमर की भीषण ज्वालाओं ने सारा संसार [illegible] चुका है। फलतः आज विश्व में शान्ति की चारों ओर पुकार है। विश्व शांति शीघ्र हो व युद्ध की दानवीय परम्परा समाप्त हो, आदि के नारे आज जन जन के कानों में टकरा रहे हैं। युद्ध शान्ति के लिए होते हैं— यह दलील निष्प्राण बनती जा रही है। युद्ध मानवता के लिए क्रूर अभिशाप है यह भली भांति प्रमाणित हो चुका है। युद्ध से वैर बढ़ता है, वैर से भय बढ़ता है और भय से अशान्ति का मार्ग शान्ति का मार्ग है अभय। अणुव्रत मानव को अभय की भावना देता है। विश्व शान्ति के लिये यह आजकी सबसे बड़ी अपेक्षा है।

आज मानव के सामने दो मार्ग हैं—एक विध्वंस का और एक निर्माण का। दूसरे शब्दों में कहें तो एक अणुबम का और एक अणुव्रत का। अणुबम में हिंसा है, प्रतिशोध की भावना है और भय है जबकि अणुव्रत में अहिंसा है, मैत्री है और अभय है। मानव अणुबम के मार्ग से भली भांति परिचित है। उसमें सुविधा है, लक्ष्य नहीं। मानव ने सुविधावादी बनकर अणुबम के मार्ग का अनुसरण अवश्य किया किन्तु उसका लक्ष्य सिद्ध नहीं हुआ। अतः उसकी दृष्टि अणुबम से हटकर अणुव्रत की ओर मुड़ी है। अणुबम बाहर की शक्ति है, अणुव्रत भीतर की। बाहर की शक्ति से भीतर की शक्ति अधिक बलवती है। बाह्य शक्ति ऊपर से अधिक दिखाई देती है वह शक्ति वास्तव [illegible]

कर सकती है किन्तु अन्तर की शक्ति की तरह उसमें स्थायित्व नहीं होता। अन्तर की शक्ति मानव के हृदय को छूती है, उसकी अन्तरात्मा को बदलती है। अणुव्रत अन्तर की शक्ति का एक व्यावहारिक रूप है। आज चाहे उसकी शक्ति थोड़ी दिखाई दे किन्तु समय पाकर उसकी असीम शक्ति पाकर अपने आप सामने आ जायगी।

प्रथम महायुद्ध के बाद लीग ऑफ नेशन्स व दूसरे युद्ध के बाद युनाइटेड नेशन्स ओरगेनिजेशन का जन्म हुआ। दोनों का लक्ष्य था—युद्ध का निवारण और शान्ति स्थापना, वे कहाँ तक सफल हुए यह सभी जानते हैं। पहले से दूसरा महायुद्ध अधिक विकराल सिद्ध हुआ। उसमें अणुबम का प्रयोग हुआ। लाखों निरपराध प्राणियों को जीवन से हाथ धोना पड़ा और लाखों अंग-विहीन तथा आश्रयहीन हो गये। हिरोशिमा और नागासाकी के भयानक काण्ड ने तत्स्थानीय विनाश के साथ-साथ सारे संसार पर वह दुष्प्रभाव छोड़ा जो शताब्दियो तक दूर नही हो सकता। फिर भी आज अणुबम और उससे भी विकराल उद्जन बम के निर्माण में होड़ सी लग रही है। मानव को जीवन विकास के लिए विज्ञान का महान् सहयोग मिला किन्तु अध्यात्म से अनुशासित न होने के कारण उस विज्ञानसे विकास के स्थान पर उसका प्रयोग अपने विनाश के लिए कर रहा है। अणुव्रत अध्यात्म की राह देता है और आत्मानुशासन के महान् सूत्रो को जीवन में प्रसारित करता है। जब तक मनुष्य अध्यात्म की ओर अपने कदम आगे नहीं बढाता तब तक लीग ऑफ नेशन्स व युनाइटेड नेशन्स या युनाइटेड नेशन्स ओरगेनिजेशन जैसे अनेको संगठन कायम होने पर भी व जिनेवा सम्मेलन जैसे अनेको शांति सम्मेलनों की आयोजना होने पर भी विश्व में सच्ची शान्ति के दर्शन नहीं हो सकते।

शांति व सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय तत्त्वों को महान् बल दिया जाता

है। छात्रों में राष्ट्रीयता के संस्कार डाले जाते हैं किन्तु जो राष्ट्रीयता अपनी सीमा को लांघकर दूसरे राष्ट्रों को खाने लिए मुंह बाने लग जाती है वह मानवता के लिए वरदान सिद्ध नहीं हो सकती। सच्चे माने में वह राष्ट्रीयता भी नहीं है, वह तो आन्तरिक क्रूरता व साम्राज्य-लिप्सा है। अणुबम जैसे विनाशक शस्त्रों के प्रयोग की पृष्ठभूमि में इसी अतिरंजित राष्ट्रीयता व साम्राज्य विस्तार की जुगुप्सनीय लालसा के संस्कार काम करते हैं। अणुव्रत का क्षेत्र व्यापक है वह जाति और राष्ट्र की परिधि से घिरा हुआ नहीं। वह मानव को विश्व कल्याण के सूत्र सिखाता है। आज की पूंजी-श्रम आदि सभी समस्याओं का उन सूत्रों में सही समाधान निहित है। इस प्रकार अणुव्रत वर्तमान समस्याओं का समाधान करता हुआ विश्वशान्ति का अमोघ मार्ग सिद्ध होता है। अणुव्रत भावना नई नहीं है। अणुव्रत भावना के आदर्श हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। मानव का सामाजिक जीवन इन्हीं अणुव्रत आदर्शों के आधार पर टिका हुआ है। जबसे मानव है तबसे अणुव्रत-भावना है। आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन इसी अणुव्रत भावना का व्यावहारिक रूप है। जो आज संसार के कोने कोने में युग धर्म का संदेश दे रहा है। अणुव्रत-आन्दोलन जन-जन के हृदय में मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठापना करता हुआ विश्वशान्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा, ऐसी आशा है



अणुव्रत और नैतिक पुनरुत्थान

—श्री विष्णु प्रभाकर

आज के विज्ञान के युग में नैतिकता सापेक्ष है और वह इसलिए कि विज्ञान स्वयं निरपेक्ष नहीं है। विज्ञान गति दे सकता है लेकिन दिशा नहीं। उसमें शक्ति है लेकिन विवेक नहीं। शक्ति की, गति की जीवन में अनिवार्यता है पर उसकी सत्ता स्वतन्त्र नहीं है। उसकी अनिवार्यता किसी के सहारे है और वह सहारा है आत्मबल का। यह एक अद्भुत व्यापार है। स्वतंत्र यहाँ कुछ भी नहीं है। स्वयं स्वतंत्रता नहीं। उस नारी की कहानी सब जानते हैं जिसने कहा था कि वह सड़क पर खाट बिछाकर सोने को स्वतंत्र है। उत्तर देनेवाले ने उत्तर दिया था कि बेशक वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है लेकिन जिस तरह वह स्वतंत्र है उसी तरह मोटर वाला भी उस सड़क पर मोटर चलाने को स्वतंत्र है, भले ही उसके इस व्यापार से नारी के प्राण संकट में पड़ जायें।

यहीं से स्वतंत्रता की निरपेक्षता समाप्त हो गई लेकिन उसकी अनिवार्यता पर कोई आँच आई हो तो कोई बात नहीं। कहें तो इसी स्थिति को अहिंसा भी कहा जा सकता है। क्योंकि स्वच्छन्दता, आकांक्षा को खुला छोडना हिंसा है और संयम अर्थात् सावधानी, दूसरे का ध्यान रखना, अहिंसा है। व्रत इसी भावना में से उपजता है। व्रत के बिना संयम, सावधानी और दूसरे का ध्यान रखने की बात सम्भव ही नहीं हो सकती है। पर दूसरी बात है कि ये व्रत बाहरी शक्ति द्वारा आरोपित नहीं किए जा सकते। वे तभी कल्याणकारी हो सकते हैं जब वे

स्वत. स्फूर्त हो क्योंकि तब वे आत्ममन्थन में से उपजेंगे । आत्म मन्थन आत्म ज्ञान से ही संभव हो सकता है । इसलिए आत्मज्ञान के बिना कुछ नहीं है । विज्ञान भी उसके बिना पंगु है ।

यही बात राजनीति के बारे में कही जा सकती है । उसमें नियम है पर उसके पीछे शक्ति है और वह शक्ति स्पर्द्धा की शक्ति है अर्थात् शुद्ध हिंसा है क्योंकि जहाँ स्पर्द्धा है वहाँ संयम नहीं है । संयम नहीं तो आत्मज्ञान कैसा ? आत्मज्ञान नहीं तो दिशा कौन देगा । फिर तो भटकना ही पडेगा । सो विज्ञान और राजनीति आज भटक ही रहे हैं । और चूंकि शक्ति दोनो के पास है इसलिए दिशाहीन शक्ति अर्थात् असयत शक्ति जो कुछ कर सकती है वही आज हो रहा है । नैतिक अराजकता, स्पर्द्धा, हिंसा; कुछ भी कहिए खुलकर खेल रहे हैं ।

दूसरे के लिए अपनी स्वतन्त्रता का आंशिक विसर्जन त्याग है । राजनीति का जन्म इसी त्याग के आधार पर हुआ था लेकिन आज वही राजनीति विशुद्ध हिंसा बन गई है क्योंकि उसमें स्पर्द्धा का उदय हो गया है । और वह इसलिए संभव हो हुआ है कि हमने त्याग को दूसरे के लिए मान लिया है जबकि वह असल में अपने ही लिए है क्योंकि अन्तत जितना कुछ अच्छा बुरा हम करते हैं उसके पीछे जो शक्ति होती है वह अपनी ही सुरक्षा की भावना में से उपजती है । बेशक उसके परिणाम का प्रभाव दूसरों पर भी पडता है । यह स्वार्थ है लेकिन यही स्वार्थ जब व्यापक बनता है तब परमार्थ बन जाता है । स्वार्थ और परमार्थ की विभाजन रेखा बहुत गहरी नहीं है क्योंकि स्वार्थ से व्यक्ति कहीं मुक्त नहीं है लेकिन जब वह [illegible] के स्व में समा लेता है तो स्व और पर का एकीकरण हो जाता है । यह

स्थिति तभी संभव हो सकती है जब आत्म ज्ञान और विज्ञान दोनों का समन्वय हो। प्रगति के लिए गति और दिशा दोनों की शर्त है।

लेकिन यह प्रश्न का अन्त नहीं है। विज्ञान और राजनीति और कहें तो अर्थनीति क्योंकि आज की राजनीति अन्ततः अर्थनीति ही है, इस हल को स्वीकार नहीं करते उनका कहना है कि आज जो असदाचार और अनैतिकता है उसका मूल अभाव—भूख है। बात ठीक जान भी पड़ती है क्योंकि हिंसा में मोह तो हैं ही भले ही वह पैसे से हो या किसी और प्रकार की सत्ता से। पैसे में बड़ी शक्ति है। विज्ञान ने उसकी शक्ति को और भी बढ़ाया है और मोह के कारण वह कुछ के हाथों में जाकर केन्द्रित हो गया है। इस मोह के पीछे विज्ञान अर्थात् बुद्धि की शक्ति है। इस कारण कुछ सर्व सम्पन्न हैं और कुछ सर्वहारा। जब ऐसा है तो विशुद्ध हिंसा है क्योंकि इसमें एक ओर घृणा है, मोह है, लोभ है दूसरी ओर ईर्ष्या, प्रतिशोध और क्रोध। विरोध यहाँ तक नहीं है वह आगे है और इसके निराकरण में है। यह स्थिति कैसे मिटे? निरंतर स्पर्धा से तो यह मिटेगी नहीं। सर्व सम्पन्न के नाश से भी इसका निराकरण नहीं होगा। इसके लिए तो जो सर्व सपन्न है उन्हें केवल गति का ध्यान छोड़कर दिशा का सहारा लेना होगा। अर्थात् उन्हें स्वार्थ के लिए त्याग करना होगा परमार्थ और त्याग में कुछ, जो दम्भ की भावना दिखाई देती है उसका कारण जैसा कि पहले बता चुके हैं केवल यही है कि वह दूसरों के लिए समझ लिया जाता है। जब व्यक्ति यह समझ लेगा कि त्याग में उसी का भला है तो उसमें न दम्भ शेष रहेगा और न पीड़ा। क्योंकि तब न मोह रहेगा न स्व की सुरक्षा का प्रश्न।

सो नैतिकता इस प्रकार 'स्व' अर्थात् 'मैं' के रूपान्तर पर निर्भर करती है। 'मैं' अलग कुछ नहीं है, जो कुछ है, वह मानव है। अणु-

व्रत आन्दोलन का मुख्य आधार भी जहाँ तक हम समझ पाते हैं यही रूपान्तर है। वह आज के समाज में फैले भ्रष्टाचार को मनुष्य की बुद्धि को जागृत करके मिटाना चाहता है। वह बुद्धि को सही दिशा देने के लिए कुछ व्रतों का विधान करता है। अपने पर नियन्त्रण रखने की भावना जागृत करता है। व्रत क्या है, अलग अलग उनका क्या मूल्य है, यह कुछ बहुत अर्थ नहीं रखता। तत्व की बात तो आत्म-ज्ञान द्वारा अपने पर नियन्त्रण रखने की है। यह भावना इस आन्दो-लन के पीछे है इसीलिए उसकी उपादेयता असंदिग्ध है।

लेकिन शर्त इस भावना को ग्रहण करने की है। इसके बिना हृदय परिवर्तन एक स्वप्न, एक दम्भ बन कर रह जायगा। आचार की चेतना की पुकार नई नहीं है। युग युग में नैतिकता और अनैतिकता में संघर्ष हुआ है। वही संघर्ष आज भी है और इस बात की घोषणा करता है कि मनुष्य ने इस भावना को ग्रहण नहीं किया। इसलिए इस आंदोलन के संचालकों का भार और भी बढ़ जाता है कि नैतिकता जड़ न बन जाए, चेतनता उसकी जागृत रहे। वह पकड़ समझने की शक्ति दे, गला घोटने की नहीं। क्योंकि विधि-विधानों का बाहुल्य और जटिलता उसी उद्देश्य की हत्या कर देते हैं जिसके लिए उनका जन्म होता है। ऐसा होगा तभी इसके संचालक आचार्य श्री तुलसी के शब्दों में 'अणुव्रत युग मानव की अन्तर वृत्तियों को मांजने में दक्ष सिद्ध हो सकेगा'। उनका यह स्वप्न कि 'अणुव्रत की नींव पर अहिंसक समाज की रचना भी बहुत संभव है' निश्चय ही पूरा हो सकता है पर तभी जब यह शर्त पूरी हो। नहीं तो नैतिकता क्या है और क्या नहीं है इसी जाल में उलझकर रह जायेंगे। सच बोलो या झूठ मत बोलो यह कहना ठीक है पर इसके साथ इस बात को भी हम न भुलावें कि ऐसा करना है कितना कठिन

कि व्रत साध्य नहीं है, साधन है। समाज व्यवस्था का परिवर्तन अनिवार्य न हो, आवश्यक अवश्य है।

आज के भ्रष्टाचार से पीड़ित युग में 'अणुव्रत आन्दोलन का स्वर मरणासन्न मानव के मुख में अमृत डालने जैसा है। एक ओर जहाँ अणुबम के पीछे मनुष्य की बुद्धि विश्व को समूल नष्ट कर देने की धमकी दे रही है वहीं अणुव्रत आन्दोलन के पीछे मनुष्य का विवेक मानवता की रक्षा के लिए सम्बन्द्ध हो उठा है भले ही विवेक का यह स्वर अभी क्षीण हो पर उसका होना ही आशाप्रद भविष्य का सूचक है।



प्रकाश की ज्योति

—राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

जैन आचार्य श्री तुलसीजी के नियन्त्रण में जो अणुव्रती-संघ स्थापित हुआ है उसके काम का कुछ विवरण मुझे मिला है। मैं इस संस्था का हृदय से स्वागत करता हूँ। इसके सदस्य अपने जीवन के दैनिक व्यापार में सत्य और आत्म धर्म को पालन करने का यत्न करते हैं। जीवन के कणों या अणुओं में जब सत्य रमा जायेगा तब जीवन का सम्पूर्ण रूप स्वमेव सत्य होगा।

बाह्य पदार्थों की भोग-लिप्सा ने संसार में नीच कर्मों और असत्य भावों की प्रवृत्ति फैला दी है। हमारा देश भी उसी प्रवृत्ति में फंसा है। थोड़े से भी पुरुषों और स्त्रियों का समूह जो अपने दैनिक कार्यों में सत्य का व्रत पालते हैं प्रकाश की एक ज्योति है। यह ज्योति दिन दिन बढ़ती जाय और सत्य के सौंदर्य की ओर लोगों को आकर्षित करे—यह मेरी लालसा है।



अणुव्रत आन्दोलन

—प्रो० श्री मन्नारायण अग्रवाल
(मंत्री, अ. भा. काँग्रेस कमेटी)

आचार्य तुलसी द्वारा शुरू किया गया अणुव्रत आन्दोलन एक क्रांतिकारी आन्दोलन है। नाम तो उसका अणुव्रत है, अर्थात् छोटे छोटे व्रतों को लेना। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि छोटे छोटे कामों के करने से ही अन्त में बड़े से बड़े काम सरलतापूर्वक किये जा सकते हैं। वर्तमान समाज में ऐसी कई बुराइयां हैं जिनके 'कारण देश में दूषित वातावरण फैल गया है। चोरबाजारी, रिश्वतखोरी, अदालतों में झूठी गवाही देना, सगे सम्बन्धियों के लिए पक्षपात करना, आदि बुराइयों से भारत का मस्तक आज नीचा हो गया है। इस कलंक को मिटाने के लिए सिर्फ भाषण देने, लेख लिखने व प्रस्ताव पास करने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए यह जरूरी है कि जनता के बीच रचनात्मक कार्य किया जाय और लोगों का चरित्र ऊँचा उठाने की कोशिश की जाय। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपना रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने इसी दृष्टि से रखा था। इन दिनों आचार्य विनोबा भावे का भूदान तथा सम्पत्ति दान आन्दोलन सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के अलावा एक बड़ा नैतिक एवं आध्यात्मिक आन्दोलन भी है। आचार्य तुलसी के अणुव्रत आन्दोलन को भी मैं इसी दृष्टि से देखता हूं और आशा करता हूं कि यह आन्दोलन दिन प्रतिदिन तेजी पकड़ता जायगा।

अणुव्रत आन्दोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि

—मुनि श्री नथमल जी

साध्य परोक्ष रहता है। लोग उसकी दिशा में चलते हैं, साधन की दिशा सुई के सहारे। परोक्ष साध्य व्यामोह का हेतु बने वह [illegible] की बात नहीं। अचरज यह है साधन में व्यामोह हो जाये। मनुष्य जीवन का साध्य है—उदय या विकास। उदय के बाद अस्त और अस्त के बाद उदय होता है—यह निसर्ग जैसा है। मनुष्य चैतन्य का धनी है इसलिये उसमें अति निसर्ग तक पहुँचने की शक्ति है। फिर भी यह सरल नहीं। मनुष्य का चैतन्य अनेक संस्कारों से दबा रहता है। अस्त न हो, उदय बना रहे, यह स्थिति संस्कार शून्य दशा या निर्विकल्प समाधि में बनती है। संस्कारी जगत् की गति [illegible] के पीछे है।

मनुष्य सोच सकता है इसलिये वह चाहता है—उदय हो। स्वार्थी अपना उदय चाहता है। कोई परिवार का, कोई समाज का, कोई राष्ट्र का और कोई सबका उदय चाहता है। उदय की दिशा एक नहीं; भाषा एक नहीं।

उदय परमार्थ-सापेक्ष होता है और पदार्थ-निरपेक्ष। पदार्थ-निरपेक्ष उदय में आत्मा के स्वार्थ और परमार्थ में भेद नहीं रहता। वह है आत्मा का उदय, जो निवृत्ति या संयम का फलित रूप है।

आत्म-इतर या आत्म-विजातीय पदार्थ के अभाव में यह पूर्ण बनता है और उनका संयोग ममकार बढ़ता है, ममकार उसे आवरण बन ढांक लेता है। यह है आत्मा में आत्मा का अनुदय जो पदार्थ-प्रतिबद्ध ममकार से बढ़ता है।

पदार्थ—सापेक्ष उदय पदार्थ से जुड़ा हुआ है। इसकी कल्पना का आधार पदार्थमात्र का तारतम्य भाव है। पदार्थ का यथेष्ट भाव है तात्पर्य कि उदय है। अनुदय का अर्थ है पदार्थ का अभाव।

जीवन के दो पहलू हैं—आत्मा या चैतन्य और पदार्थ या अचैतन्य। दोनों के उदय की कल्पनायें एक दूसरे के विपरीत हैं।—

१—पदार्थ-भाव—आत्मा का अनुदय

२—पदार्थ-भाव—सांयोगिक उदय

१—पदार्थ-अभाव—आत्मा का उदय

२—पदार्थ-अभाव—सांयोगिक अनुदय

शुद्ध या शरीर मुक्त आत्मा में उदय या अनुदय की कल्पना से हमें कोई तात्पर्य नहीं। यह हमारी दृष्टि से परे है। पदार्थ अचेतन है उनका उदय या अनुदय क्या हो? उदय या अनुदय की कल्पना शरीर-धारी-जीव और पदार्थ दोनों के संयोग से बनती है।

लौकिक विचार है—मनुष्य को जो चाहिए वह मिल जाय—यह उदय है। मोक्ष-दृष्टि के अनुसार यह अन्तरंग की शुद्धि नहीं है। जो अन्तरंग की शुद्धि नहीं वह उदय नहीं। दो दृष्टियां हैं। दोनों के आधार पृथक्-पृथक् हैं। यह बौद्धिक विश्लेषण है जो वस्तु-स्थिति को

स्पष्ट करता है। व्यवहार में दैहिक-जीवन पदार्थ से दूर रह सकता नहीं। जहा जीवन, वहा पदार्थ का संयोग है और जहां पदार्थ-संयोग है, वही जीवन है—यह पूरी व्याप्ति है।

जीवन के लिए पदार्थ-सयोग अनिवार्य है और पदार्थ-संयोग के लिए श्रम।

श्रम आत्मिक धर्म नहीं, दैहिक धर्म है। देह निर्वाह के लिए वह श्वास की भांति आवश्यक है। आत्मिक धर्म उसका सहवर्ती होना चाहिए। आवश्यकता न छूटे यह दैहिक अपेक्षा है किन्तु ममत्व और ममकार की वृत्ति न बढ़े, शोषण और अपहरण का भाव न आये, सबसे अधिक सुखी और ऊँचा बनने की भावना न जागे इसलिए प्रत्येक दैहिक प्रवृत्ति पर आत्मिक धर्म का नियन्त्रण अपेक्षित है। आत्मिक धर्म पदार्थ निरपेक्ष होता है इसलिए वह दैहिक प्रवृत्ति को भी अनन्त की ओर बढ़ने नहीं देता। अति भोगवाद और अति संग्रहवाद जो चलता है वह आत्मिक धर्म के अभाव में ही चलता है। कोई व्यक्ति भोग्य पदार्थ और उसकी आवश्यकता बढ़ाये—यह किस लिये? तृप्ति के लिये? तृप्ति का चरम रूप अभोग में है। भोग से क्षण भर के लिये तृप्ति की प्रतीति होती है, किन्तु सही अर्थ में उससे अतृप्ति का संस्कार बलवान बनता है। प्रत्येक बार का भोग क्षण भर के लिए अतृप्ति को दबा उसे स्थायित्व दे जाता है। तम्बाकू का व्यसनी तम्बाकू पी तृप्ति नहीं पाता, किन्तु तम्बाकू पीने की आकांक्षा को स्थायी अवश्य बनाता है। तृप्ति मनस्तोषण है। [illegible] पदार्थ-संग्रह में अतृप्ति का पर्यवसान है। इसीलिए निवृत्ति या निवृत्ति, [illegible] या अकिंचनता की अपेक्षा आती है। पूर्ण [illegible] के बिना सुविधा नहीं, यानी सुविधा का अर्थ है—दैहिक आवश्यकता का उर्द्ध्व विस्तार। [illegible]

मुक्ति का मार्ग नहीं स्वयं मुक्ति है। मुक्ति का मार्ग है—संयम का क्रमिक विकास। यह कठिन साधना है। दैहिक जीवन में अदैहिक भाव सतत् नहीं चलता। प्रवृत्ति अनिवार्य है। इसलिए निवृति को प्रवृत्ति के साथ घसीटना पड़ा। वह प्रवृत्ति के साथ दो रूप में जुड़ी, प्रवृत्ति को सत् बनाने के लिए और उसे सीमित करने के लिए। प्रवृत्तिमात्र दैहिक अनिवार्यता रहे उसके सहचारी राग द्वेष या असयम के संस्कार सक्रिय न हो, आत्मा में संयम की इतनी मात्रा बढ़ जाय तब प्रवृत्ति सत् या सीमित बन जाती है। उसका असत्-अंश जो कि आत्मिक असंयम से आता है, मिट जाता है। आत्मिक विशुद्ध चिन्तन से प्रेरित हो वह सत् बन जाती है।

असंयम की परिधि में जो प्रवृत्ति चले वह सत् नहीं बनती। निवृत्ति उसे सीमित बनाती है। व्यापार एक प्रवृत्ति है। व्यापार शब्द को मैं रूढ़ि में नही ले जा रहा हू। जीविका के साधन मात्र व्यापार है। जीविका जीवन की पहली मजिल है। यह छूट नही सकती। किन्तु जीवन की आवश्यकताओ का अल्पीकरण, आवश्यकता पूर्ति के स्रोतों की सीमा और स्रोतगत बुराइयो का नियमन किया जा सकता है और किया जाना चाहिये। नही तो मनुष्य अपनी निरकुश या असीम प्रवृत्ति का स्वयं ग्रास बन जाता है। यह है अणुव्रत भावना की पृष्ठभूमि। इसलिए निवृत्ति या पदार्थ निरपेक्ष उदय की भूमिका पर चलने वाला अणुव्रत आन्दोलन नकारात्मक हो—यह स्वाभाविक है।

प्रवृत्ति जीवन की विवशता का पक्ष है और निवृत्ति शुद्धि का, प्रवृत्ति में शुद्धि की जितनी मात्रा होती है वह निवृत्ति प्रदत्त होती है। हिंसा के साथ अहिंसा की मात्रा न रहे तो वह एक क्षण में विश्व

को भस्म कर डाले। निवृत्ति के विकास का अर्थ यह है कि अहिंसा की मात्रा बढ़े। इसलिए प्रवृत्ति के क्षेत्र में संयमी व्यक्ति नकार की भाषा में ही बोल सकता है।

प्रवृत्ति का कर्म क्षेत्र सामाजिक जीवन है या यूं कहना चाहिए समाज के लौकिक जीवन का जो पहलू है वह प्रवृत्ति का कर्म क्षेत्र है। भूलिये मत, हिंसा अहिंसा के लिए समाज का कोई पृथक्-पृथक् निर्वाचित क्षेत्र नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति हिंसा और अहिंसा की आधार-शिला है। किन्तु दोनों का स्वरूप एक नहीं है, सूक्ष्म दृष्टि से आधार भी एक नहीं है। व्यक्ति की जो वृत्ति अहिंसा है वही हिंसा और हिंसा है वही अहिंसा नहीं बनती। किन्तु एक स्थूल दृष्टि से दोनों वृत्तियां एक ही व्यक्ति में बनती हैं, इसलिए हम एक ही व्यक्ति को उन दोनों का आधार मान लेते हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है—'जीवन का लौकिक पहलू कैसे रहे'—यह चिन्ता-क्षेत्र समाज के लौकिक पक्ष के सूत्रधार व्यक्तियों का है। समाज का लोकोत्तर या आत्मिक पक्ष कैसा हो? यह दायित्व संयमी-व्यक्तियों का है। संयमी—असंयमी की प्रवृत्ति का विधान करे—यह उनकी मर्यादा नहीं। उसकी मर्यादा है—प्रवृत्ति में असंयम की मात्रा बढ़े, अनावश्यक हिंसा बढ़े, उसे रोकने के लिए समाज को संयम की भावना दे। आवश्यक हिंसा बढ़ने का प्रश्न नहीं उठता। वह जीवन की आवश्यकता से सारी छूट नहीं सकती तो बढ़ भी नहीं सकती। जो बढ़ती है वह फिर आवश्यक हिंसा नहीं रहती। वह अनावश्यक हिंसा हो जाती है।

मित्र को न मारे अहिंसा यही नहीं। उसकी मर्यादा में शत्रु की कल्पना है कहां? जहां शत्रु की कल्पना है वहां अहिंसा कैसी? इसलिए किसी को न मारे यह अहिंसा है। समाज इतना समर्थ बन जाए तो क्या होगा? फिर कोई समस्या नहीं। ऐसी स्थिति नहीं बनती है तब तक आवश्यक हिंसा

शक्ति से विफल नहीं किया जा सकता। तब हिंसा चलती है, यह है विरोधी हिंसा या प्रत्याक्रमण की हिंसा। यह आवश्यक मानी जाती है इसलिए संयम की परिधि में उसे स्वीकारोक्ति मिले ? नहीं। यह सत्य से परे है। संयम की भाषा यह होगी—जिस हिंसा के त्याग को तुम असम्भव मानते हो उससे नहीं बच सकते तो कमसे कम उस हिंसा से तो अवश्य बचो जिसे त्यागना तुम्हारे लिए सम्भव है। सम्भव है साधना बढ़ते बढ़ते असम्भव लगने वाली अहिंसा भी सम्भव बन जाय। कोई समाज उपयोगिता की दृष्टि से व्याज को न्याय मानता है, उसे न छोड़ सके तो कम से कम निर्धारित दर से अधिक व्याज तो न ले।

न्याय और अन्याय की परिभाषा आत्मिक नहीं है। यह सामाजिक आवश्यकता से फूट पड़ने वाली व्यवस्था है। अहिंसा की भूमिका में संग्रह-मात्र अवैध है।। लौकिक पक्ष सर्व-असंग्रह को स्वीकार नहीं करता। अति संग्रह भी उसके हित में नहीं। इसलिए वहां संग्रह के स्रोत दो रूप लेते हैं—वैध और अवैध। अपनी आजीविका न रुके और दूसरे की न टूटे वह वैध और इससे जो विपरीत चले वह अवैध। लोग इस भावना को भूल जाते हैं. व्यामोह में फंस अवैध स्रोत द्वारा धन टानना चाहते हैं तब संयम की नकार ध्वनि उठती है—कम से कम अवैध को तो त्यागो। यूं नकार की भाषा एक मर्यादा है जो प्रवृत्ति का नियमन करती है। अणुव्रती-संघ की नियमावली केवल निषेध है। लोग कहते है—यह क्या ?—'मत करो, मत करो' यही क्यों ? 'यह करो', यह भी तो आना चाहिये। असंयम की भाषा में 'ऐसे करो' यूं ही मिलता है। 'मत करो' के पीछे साधना का बल चाहिए। इसलिए यह विधान साक्षेप है। 'करो' इसके विधान की कोई अपेक्षा नहीं। जो आवश्यकता है वह अपने आप प्रवृत्ति करायेगी।

'मत करो' यह सहज आवश्यक प्रतीत नहीं होता। इसलिए इस पर अधिक शक्ति लगाने की अपेक्षा है।

'करो' इसमें कार्य विधि के औचित्य की अपेक्षा होती है। किन्तु संयम अपनी भूमिका से हट कर असंयम के औचित्य का विधान कर नहीं सकता। संयम की दृष्टि में असंयम का औचित्य असंयम की दृष्टि से भले ही औचित्य हो, औचित्य है नहीं। असंयम के अनौचित्य और औचित्य में संयम की मात्रा भेद स्वीकार्य है किन्तु उसका स्वरूप पार्थक्य होता है। संयम केवल असंयम की अनियमितता को नियमित कर सकता है। किन्तु उसके साथ समझौता नहीं कर सकता—सहायक नहीं बन सकता।

नकार की भाषा में नैराश्य है और इससे नैतिक प्रगति में बाधा आती है यह प्रश्न तर्क-संगत नहीं और इसलिए नहीं कि नकार का स्वरूप और कार्य एक है फिर भी उसकी भाषा एक नहीं। पृथक् पृथक् भूमिकाओं में इसकी पृथक् २ भाषा होती है। व्यक्ति की भूमिका, परिवार की भूमिका, समाज की भूमिका और राष्ट्र की भूमिका—ये कुछ भूमिकाएँ हैं। व्यक्ति-व्यक्ति की सीमा में जितना स्वतन्त्र है उतना परिवार में नहीं। समाज की सीमा में उससे अधिक और राष्ट्र की सीमा में उससे भी अधिक परतन्त्रपन आता है। जो व्यक्ति केवल व्यक्ति ही नहीं, पारिवारिक भी है, सामाजिक भी है और राष्ट्रीय भी है वह परिवार, समाज और राष्ट्र की उपेक्षा कर नहीं सकता। यानी उनकी उपेक्षा कर व्यक्ति-व्यक्ति रह सकता है सामाजिक और राष्ट्रीय नहीं रह सकता। इसलिए इन भूमिकाओं में नकार की भाषा अलग-अलग होती है। जैसे एक व्यक्ति प्रतिज्ञा लेता है—जहाँ तक अपना प्रश्न है मैं युद्ध नहीं लडूँगा, राष्ट्रीय आवश्यकता होगी तो मैं

वह लड़ूंगा। व्यक्तिगत संयम को राष्ट्रीय भूमिका में नही रख पाता इसका अर्थ है यह राष्ट्र की व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। एक संयमी या साधक है वह किसी भी दशा में नहीं लड़ सकता क्योंकि उसकी भूमिका कुछ और है। सही अर्थ में भूमिका के अनुरूप निषेध के द्वारा लौकिक अभ्युदय में कोई बाधा आती नहीं। और जो लौकिक अभ्युदय की असीम कल्पना है वह पूरी न हो तो कुछ आपत्ति जैसी बात नही लगती। जो संयम को न मान कर चले और साम्राज्य-विस्तार, जाति-विस्तार और पदार्थ-विस्तार करके अधिक सुखी बने ऐसा तो नही दीखता।

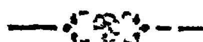
जो लोग आवश्यकता की पूर्ति को सीमातिरेक मूल्य देते है, उनकी दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन रूखा है और है भी। पदार्थ-निरपेक्ष है इसलिये। सामाजिक व्यक्ति आवश्यकता का मूल्य छोड़ नही सकता किन्तु शुद्धि का मूल्य उसके लिए उससे कही अधिक होना चाहिए। यह समझ कर चले उसके लिए यह सबसे अधिक मूल्यवान है।

समाज में हिंसा और अहिंसा ये दोनो तत्व रहते हैं। कोई भी समाज पूरा अहिंसक नहीं बनता तो पूरा हिंसक भी नहीं बनता। हिंसक और अहिंसक समाज की जो कल्पना है उसका आधार समाज का दृष्टि बिन्दु है। जो समाज जीवन की आवश्यकता पूर्ति को ही मुख्य और उसकी शुद्धि को गौण मान कर चले—यह हिंसा की ओर गति है। आवश्यकता पूर्ति की भांति—शुद्धि या साधन के नियमन को भी जो अनिवार्य मानकर चले वह समाज अहिंसक है। अणुव्रत आंदोलन की इस अर्थ में अहिंसक समाज-रचना की कल्पना है।

लोग मानते हैं—समाज में दुश्चरित्र प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण बढ़ता है। कुछ अंशो में यह ठीक भी है। किन्तु दुश्चरित्र वृद्धि का यही एक मात्र हेतु है यह नहीं माना जा सकता। मनुष्य की वास-

नायें और संस्कार परिस्थितियों से अधिक प्रबल कारण हैं । अणुव्रत आन्दोलन की दृष्टि यह है कि संस्कारों पर विजय की जाए ।

संयम और त्याग का दूसरा पहलू और है । परिस्थितियाँ अनु-कूल हों, जीवन की चालना के साधन यथेष्ट प्रमाण में सुलभ हों तो भी संयम आवश्यक होता है । इसलिए होता है कि जीवन विलासी न बने । अभाव में जैसे संग्राहक वृत्ति जन्य दुश्चरित्र की मात्रा बढ़ती है वैसे भाव में विलासजन्य दुश्चरित्र की मात्रा बढ़ती है । इसलिए संयम की अपेक्षा दोनों में समान है । इसलिए इस आन्दोलन का क्षेत्र बहुत व्यापक हो चलता है । जीवन चले इसके लिए जैसा व्यावहारिक या क्रियात्मक पक्ष आवश्यक है, वैसे ही जीवन में विकृति की मात्रा न बढ़े इसके लिए उसमें पारमार्थिक या अक्रियात्मक पक्ष भी आवश्यक है । अणुव्रत-आन्दोलन इसका महान् प्रतीक है ।



अणुव्रत आन्दोलन व समाजवादी दृष्टिकोण

—मीर मुश्ताक अहमद एम.एल.ए.
(सेक्रेटरी–दिल्ली प्रदेश प्रजा सो० पार्टी)

अपने देश में अपना राज है लेकिन अपना राज होते हुए भी चारो ओर भ्रष्टाचार फैला हुआ है। क्या सरकारी अफसर, क्या राजनैतिक कार्यकर्त्ता, क्या जनता, सबही एक रोग के शिकार हैं। एक सरकारी अधिकारी अगर रिश्वत लेता है तो देने वाला तो जनता में से ही है। पहले तो सारी बुराइयाँ अंग्रेजी सरकार के सर पर डाल देते थे, परन्तु अब किसके सर पर डाली जाये? यह तो कुछ अपना ही दोष है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सच्ची स्वतंत्रता का अनुभव प्राप्त नहीं हो सका। राजनैतिक दलों के नेता इस ओर प्रयास कर रहे हैं कि किसी प्रकार से देश में स्वस्थ व सच्चा समाज बने परन्तु कुछ बन नहीं रहा है इसका मूलभूत कारण यह है कि हम समाज को अच्छा बनाने की बात तो करते हैं परन्तु अपने व्यक्तिगत चरित्र को सुधारने की ओर ध्यान नहीं देते।

देश पिता महात्मा गांधी ने जो सिद्धान्त हमारे सम्मुख रखा था वह यह था कि राजनीति का आधार सत्य हो। जब तक महात्माजी जीवित रहे वे हमें कांटों से बचाते रहे परन्तु उनके पश्चात् हम भटक गये। समाजवादी अपने ढंग से देश की निर्धनता को दूर करने में लगे

हुए हैं । समाजवाद के सिद्धान्त बहुत अच्छे हैं । परन्तु सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने वालों का अपना जीवन इस प्रकार का हो कि अन्य व्यक्तियों को प्रभावित कर सकें । मैंने इस दृष्टि से अणुव्रत आन्दोलन को समझने का प्रयास किया है और मैं समझ सका हूँ कि देश के प्रत्येक व्यक्ति को अणुव्रत आन्दोलन की ओर ध्यान देकर अपने जीवन में त्याग की भावना उत्पन्न करके श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने का निर्णय करना चाहिए । इस आन्दोलन के नियम देश के समस्त निवासियों पर लागू होते हैं । किसी भी धर्म अथवा मजहब से इनका टकराव नहीं । यदि समाज के प्रत्येक अंग में स्वच्छता व पवित्रता होगी तो समस्त समाज सुधर जायेगा व हम अपने देश में अच्छा समाज बनाने में सफल होंगे । यह आन्दोलन एक समाज-सुधारक आन्दोलन है, जिसके नियम अपना कर प्रतिज्ञा लेने से और उनपर चलने से सच्चे अर्थ में हम समाजवाद भी फैला सकते हैं– अपने देश को और सामाजिक जीवन को एक नई प्रेरणा दे सकते हैं । ऐसे सिद्धान्तों के आधार पर बनने वाला समाज वस्तुतः एक मानव-समाज होगा जिसकी गतिविधि अहिंसात्मक ढंग से चलने पर निर्भर करेगी ।

अणुव्रत पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से प्रत्येक व्यक्ति इसकी प्रशंसा करेगा । इस आन्दोलन की यह विशेषता है कि यह व्यक्ति के निजी जीवन में आत्म सुधार व नियमन की ओर ध्यान आकर्षित करता है व क्रियात्मक ढंग पर बल देता है । मुझे आशा है, अणुव्रत आन्दोलन सफल होगा व देश में एक नये समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा ।

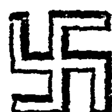


एक नैतिक आन्दोलन

—डॉ. बी. एन. गांगोली

मुझे अणुव्रती संघ के विधान तथा इस संघ की स्थापना के अवसर पर आचार्य श्री तुलसीरामजी स्वामी द्वारा दिये गये उपदेशों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस संस्था की नींव मानव जाति के नैतिक, सामाजिक, तथा आध्यात्मिक उत्थान की भावना पर आश्रित है। मैं इस बात से विशेष प्रभावित हुआ हूँ कि इस संस्था के नियम वर्तमान समय की सामाजिक बुराइयों को सामने रखकर बनाये गये हैं, न कि कोरी नैतिकता की काल्पनिक उड़ान पर। इस समय हमारे देश में चोरबाजारी, घूसखोरी, प्रान्तीयता, जातिभेद आदि में अत्यधिक वृद्धि होती जा रही है जो कि देश को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने में भारी रुकावट डाल रहे हैं। इन असामाजिक-प्रवृत्तियों से लोहा लेने तथा उनसे भारतीय जन-जीवन को मुक्त कराने का बीड़ा उठाकर इस संघ ने सही दिशा में कदम उठाया है। मुझे पूर्ण आशा है कि यह संस्था अपने लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर उन्नति करेगी।

मैं अणुव्रती संघ की सफलता के लिए हार्दिक कामना करता हूँ।



अणुव्रती संघ की सफलता

—मुनि श्री [illegible] जी

अणुव्रती संघ की स्थापना हुए अभी लगभग ५ वर्ष हुए हैं। इतने थोडे समय में संघ की जितनी प्रगति हुई है और देश के सामूहिक जीवन पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई है यह आंकना सरल नहीं होगा। क्योंकि अति प्राचीन व्यवस्था में परिवर्तन ले आना ५-४ वर्षों का काम नहीं, उसे लाने में पचासों वर्ष लग जाते हैं पर फिर भी जब संघ की सफलता पर विचार किया जा रहा है तब यह [illegible] सफल है अन्यथा उसकी सफलता की विवेचना करने [illegible] ही नहीं मिल पाता। इस अनुपात पर संघ ने जो काम किया है वह [illegible] दृष्टि से काफी बडा और महत्वपूर्ण है। जिज्ञासु ऐसा कहने के आधार का स्पष्टीकरण चाहेंगे।

अणुव्रत भावनामूलक आन्दोलन है। भावना के बाद [illegible] रूप व्यवहार में आता है। अतः हम पहले अणुव्रत की भावना के सम्बन्ध में विचार कर लें। पहले पहल जब संघ की स्थापना हुई थी तब बहुत से लोगों का यह ख्याल था कि इन परिस्थितियों में जो यह आन्दोलन चलाया जा रहा है, चल नहीं सकेगा। यह तो नैतिक [illegible], गतिविधियों में विश्वास रखने वाले लोगों की धारणा थी। पर कुछ ऐसे आदमी भी थे जो इस आन्दोलन की भूमिका से [illegible] जुड़े हुए होने पर भी यह नहीं [illegible] थे कि ऐसे आन्दोलन का

उनमें प्रयोग करने का क्या अर्थ हो सकता है ? अर्थात नैतिक उत्थान के सम्बन्ध में उनका यह ज्ञान नहीं के बराबर था । इसी से संघ के उद्घाटन के समय इसके सदस्यों में अधिकांशतया गृह कार्य भार से मुक्त और कुछ एक सुधारों की एक बहुत छोटी संख्या ही थी । लोग कहते थे कि यह कोई चलने वाली चीज थोड़े ही है । भला मुट्ठी भर आदमी, और वे भी अवसरप्राप्त, क्या इस संघ को जीवित रख सकेंगे और क्या संघ की शोभा को बढ़ा सकेंगे ? लेकिन इन सब बातों से संघ–प्रमुख की अटल श्रद्धा और अदम्य उत्साह विचलित नहीं हुआ और इस अणुव्रत प्रचार के लक्ष्य को लेकर उन्होंने अपनी लम्बी यात्रा शुरू कर दी । इसका पहला अधिवेशन दिल्ली में हुआ और वहां पर संघ देश की रचनात्मक प्रवृत्तियों के रूप में सामने आया और जैसा कि प्रायः प्रारम्भिक दशा में हुआ करता है जनता ने और पत्रकारों ने इस पर गहरी व्यंगोक्तियां कसीं, पर कुशल नियन्ता के लिए ये सब मार्ग दर्शन का काम कर गईं और उन्होंने संघ के उन आने वाली बुराइयों से बचने के लिये अपने आपको तैयार कर लिया ।

पहले अधिवेशन की सफलता ने संघ को देश के सामने तो ला ही दिया पर अणुव्रती संघ और तेरापंथ दोनों संस्थाओं के नेतृत्व का भार एक ही नेता के हाथ में होने के कारण तेरापंथ यानि संघ की पृष्ठ-भूमि या अन्तरंग परिस्थितियों से भी संघ का प्रभाव पर्याप्त बढ़ गया । अब संघ की आलोचना करने वाले लोगों के विश्वास ढहने लगे । उन्हें लगा कि उनकी आशंकायें निरर्थक तो थीं ही पर साथ ही साथ अज्ञानतापूर्ण भी कितनी थीं । उनके सामने भी नैतिक जीवन की आवश्यकता और सफलता का चित्र आने लगा ।

संघ-प्रमुख का पर्यटन चालू रहा और इस काल में अनेक सम्प्रदाय, अनेक आचार और अनेक विचारों के लोग आपके सम्पर्क में आये । इन सबने ऐसा समझने का अवसर दिया कि संघ एक बड़े काम का आंदो-लन है । नैतिक बुराइयों को समझा कर हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त के द्वारा आचार्य श्री तुलसी और उनके शिष्यों ने देश के बड़े भू भाग पर अणुव्रत-भावना का प्रसार चालू रखा जिसका फलित प्रति वर्ष होने वाले अधिवेशनों में सदस्यों की बढ़ती हुई सदस्य संख्या से देखा जा सकता है । प्रारम्भिक समय में इसके ७५ सदस्य थे पर बाद के अधिवेशनों पर संख्या क्रमश: बढ़ती हुई ६२५ से ११००, १४०० और २२०० पर आई है । आज की वर्तमान व्यवस्था में इसके लगभग २३०० सदस्य हैं ।

यद्यपि सदस्य-संख्या की दृष्टि से संघ की सफलता का अनुमान करने पर वह असंतोषप्रद नहीं लगती पर भावना की दृष्टि से मुझे लगता है कि संघ बहुत मजबूत बन गया है । वे मनुष्य जो कभी अणुव्रतों को संदेह की दृष्टि से देखा करते थे आज आशा की दृष्टि से देख रहे हैं । लोगों ने नैतिक जीवन के प्रति आदर की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया है तो एक दिन अवश्य ही ऐसा आयेगा जब उनके आचार भी विचारों का साथ देंगे बड़े-बड़े पूंजीपतियों को भी, जो अणुव्रतों के वातावरण में रहते हैं मैंने यह कहते सुना है कि उन्हें अणुव्रत के मार्ग पर आने की प्रेरणा मिली है । हो सकता है उनके विचारों में इस परिवर्तन का आना और स्थितियों से भी प्रेरित हो, पर यह निश्चित है कि अणुव्रतों के आकर्षण ने उन्हें एक नई दिशा दी है । उन रूढ़िचुस्त लोगों में भी एक परिवर्तन हुआ जो अपनी लीक से एक कदम भी पीछे हटने को तैयार नहीं थे । वे लोग जो अणुव्रतों को मध्यम वर्ग के लिये अनुपयुक्त मानते थे आज आवश्यक और उपादेय

सरल भी मानने लगे हैं। लौकिक व्यवहारों के प्रति उनमें आवश्यक और अनावश्यक का विवेक होने लगा है। अब अणुव्रती होने में व्यक्ति अपना गौरव मानने लगा है जो इसकी भावी प्रगति का सूचक है।

हां, बड़ी संख्या में लोग अभी तक इसके सदस्य नहीं बने हैं पर इतना निश्चित है कि लाखो व्यक्तियोंकी दृष्टि आज इस केन्द्र तक पहुँच चुकी है कि उन्हें अणुव्रती बनना है। अपनी विवशता को वे महसूस करते हैं अत. आंशिक अणुव्रतों का पालन करते हैं। अणुव्रतों ने एक बहुत बड़े जनगण में सिहरन पैदा कर दी है। कोई भी आंदोलन जब अपनी अन्त-रंग स्थितियो में सफल हो जाता है तो ऐसा नही समझने का कोई कारण नहीं कि उसका रूप बाह्य परिस्थितियों में भी निखरने वाला है।

इसके अलावा देश की उस जनता से जो नैतिक व्यवस्था में आस्था रखती है उसका सम्पर्क उज्ज्वल भविष्य का अनुमापक है। बुराइयों की तरह अगर अच्छाइयाँ भी मिलकर काम करें तो बड़े पैमाने पर क्रांति या सुधार हो सकता है इस दृष्टि से भी संघ को काफी सफलता मिली है।



मानव समाज के उत्थान का महायज्ञ

—प. मौलिचन्द्र शर्मा
(अध्यक्ष–भारतीय जन संघ)

भारत ने धर्म को नित्य सत्य पर आधारित माना है और उसे देश, काल तथा पात्र की सीमाओं से अतीत कहा है। इसीलिए हमारा धर्म मानव-धर्म कहलाता है।

भारत ने धर्म को 'आचार-प्रभव' माना है और आचार संयम पर आधारित है। इच्छाओं और आकांक्षाओं का विस्तार अनन्त है। कामनाओं की तृप्ति कोई पार नहीं पाया। उनके अतृप्त रहने से मन अशान्त रहता है। अग्नि को ईंधन डालकर बुझाने के प्रयास के समान, कामनाओं की तृप्ति के लिए जीवन–भर विषयों के पीछे दौड़-धूप करने से मनुष्य राग-द्वेष में फँसा रहता है। धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य सुख के साधन नहीं, वे कामोपभोग दिला सकते हैं परन्तु तृप्ति नहीं, और उसके अभाव में सुख कहाँ?

इसीलिए भारतीय परंपरा में काम का संयम विहित है। काम और इच्छा को एक निश्चित परिधि के भीतर संयत रखने की सुव्यवस्थित पद्धति खोज निकाली गई है। इसे ही कहीं 'दम' कहीं 'शील' कहीं 'अणुव्रत' नाम दिया गया है।

भारतीय संस्कृति की विशेषता ही यह है कि वह संयम को प्रधानता देती है। एक सुपठित अनेक भाषाविद् और दर्शन का विशेषज्ञ विद्वान् कहला सकता है, परन्तु यदि उसने अपने जीवन में संयम नहीं अपनाया तो वह संस्कृत नहीं कहा जाता।

दूसरी ओर अर्धनग्नगांधी महात्मा और मुनि माना जाकर पूजित होगा। यहां बाहरी बनाव व भड़क अथवा बौद्धिक चमत्कार पर नहीं— आत्मशुद्धि पर बल है।

अणुव्रत का उद्योग इसी मौलिक सत्य को समाज के सामने ला रहा है। भारत की भावी उन्नति और संसार में उसके विशेष ध्येय की पूर्ति इसी पर निर्भर है कि भारतीयों में सयम की पुन. प्रतिष्ठा हो। अतः अणुव्रत जहां चरित्र निर्माण के द्वारा वास्तविक अर्थ में राष्ट्र निर्माण का कार्य है, वहां वह मानव समाज के सार्वभौम उत्थान और संस्कार का महायज्ञ है। भारत का तो यही नारा रहा कि सबको, समस्त विश्व को, शुद्ध संस्कार देकर संस्कृत अथवा आर्य कोटि में ले आया जाय। अणुव्रत देश, जाति, वर्ण और पंथ निरपेक्ष शुद्ध सत्य धर्म है। मैं इसकी सफलता चाहता हूँ।

शान्ति का आन्दोलन

—डॉ॰ सैफुद्दीन किचलू
(उपाध्यक्ष, विश्व शान्ति परिषद्)

अणुव्रत आन्दोलन की तह में जायेंगे तो पायेंगे कि यह चरित्र-निर्माण के नियमों से कूट कूट कर भरा है। जो नियम इसमें रखे गये हैं वे किसी एक खास धर्म के नहीं हैं—वे सब धर्मों से सम्बन्धित हैं, धर्म के मौलिक उसूलों से भरे हुये हैं। आज जबकि आर्थिक विषमता के कारण देश की स्थिति अस्त-व्यस्त हो रही है, मैं समझता हूँ कि लोग इस कार्यक्रम में, जो अपरिग्रह के आधार पर चलता है, [illegible] वह चरित्र निर्माण का आन्दोलन, शान्ति का आन्दोलन है। यह जन-जन में शान्ति फैलाने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है। भारतवर्ष अपनी सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और अध्यात्मवाद के लिए बहुत पुराने जमाने से, जबकि दूसरे देशों के लोग असभ्य दशा में थे, सबसे आगे रहा है। यह सभ्यता और संस्कृति तभी जीवित रह सकती है जबकि भारत के हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी आदि कौमों के लोग एक नेशन बन जाय। फिरका-परस्ती की भावना राष्ट्र के लिए हितकर नहीं है। मुझे खुशी है कि अणुव्रती संघ में फिरका परस्ती के लिए कोई स्थान नहीं है। यह सब कौमों और मजहबों के लिए है।



व्यक्ति-सुधार की ओर कदम

—मुनिश्री मोहनलालजी

अणुव्रतों से परिष्कृत भावी युग-

वह युग स्वर्णिम व शान्तिमय युग होगा जिस दिन आज के ब्लेक, घूस और झूठ की जगह अणुव्रतों का संसार में बोलबाला होगा, जीवन के हर पहलू में बसी अनैतिकता का स्थान नैतिकता ले लेगी, बिजली के बल्बों की नाईं जन-जन के जीवन को अणुव्रत अपने अनूठे व अपूर्व आलोक से आलोकित करेंगे, और भोगवाद से अभिशप्त जगत् त्याग से उद्दीप्त होगा। आडम्बर प्रधान समाज का ढांचा परिवर्तित होकर सादगीपूर्ण होगा वह दिन समाज-परिवर्तन के साथ आज की व्याकुलता और दिखावे की जगह शांति, और यथार्थ क्रम लायेगा। उस दिन व्यक्ति के भाषणों और लेखों में आदर्श नहीं; जीवन के क्रियाकलापों में आदर्श मिलेगा। उस समय व्यक्ति शिक्षक व उपदेशक बनने का आदी नहीं होगा, प्रत्युत अपने जीवन में आदर्श उतारने का कड़ा आग्रह उसके मानस-पटल पर अंकित रहेगा।

अणुव्रत और उनकी आवश्यकता-

अणुव्रत आचार्य श्री तुलसी द्वारा निर्दिष्ट ८५ नियम हैं जो जीवन के संशोधन व ध्वस्त-प्राय: चरित्र को पुन: प्रतिष्ठित करने की सामर्थ्य रखते हैं। कोई भी जीवन व उसका समष्टि रूप समाज व समाज का

समष्टिरूप राष्ट्र, चरित्र व नैतिकता के बिना उन्नत और सुसम्पन्न नहीं होता। नैतिक पतन होने से बड़े बड़े साम्राज्यों की भी जड़ें हिल जाती हैं और बड़े बड़े समरों की विभीषिका छा जाती है। एक दूसरे के ऊपर शासन चलाने की असफल उत्कण्ठायें उभरती हैं और परिणामस्वरूप लाखों निरपराध प्राणी मौत के घाट उतर जाते हैं। नीति, नैतिकता और प्रेम— ये इन सबको मिटाने वाले और परस्पर मधुर व्यवहार उभारने वाले होते हैं। इसीलिए ये विश्व के लिए अनिवार्य आवश्यक हैं। आज जब इनका संसार में अभाव है तो कुहराम मचा हुआ है। चारों तरफ दुःख, दारिद्र्य और अशान्ति के काले बादल उमड़ घुमड़ कर संसार के प्रकाश को निगल जाना चाहते हैं। नैतिक पतन व चरित्र हीनता की तन्द्रा में उत्थान और सदाचार की पुकार अरण्य-रोदन के समान स्वयं में ही विलीन होती सी प्रतीत हो रही है। आज प्रायः सभी धन्धों-धन्धे पेशे वालों में अनीति घर-सा कर गई है। जो जिस पेशे में है उसी में कुछ न कुछ बुराई लाकर केवल धन बटोरना चाहता है। [illegible] आज यह नहीं सोचता कि नैतिक और चारित्रिक पतन का परिणाम कितना भयङ्कर और कितने विकट संकटों को निमन्त्रण देने वाला होता है। प्रत्युत आज चोटी से लेकर नख तक का जन मानस बगुले की तरह इस ध्यान लगाये बैठा रहता है कि कोई किसी तरह भी मेरे जाल में फँसे और मैं उसका सर्वस्व हड़प लूँ। इस वृत्ति के विरुद्ध अणुव्रत आन्दोलन एक क्रान्ति करने का उपक्रम है। यह आन्दोलन समय की [illegible] के साथ समझौता न कर एक सुनिश्चित और सुनिर्दिष्ट मार्ग से जीवन की समस्याओं को हल करने का आग्रह करता है।

शोषण और उत्पीड़न से त्रस्त वर्तमान [illegible] का [illegible] [illegible] है और इसीलिए शोषण आदि के विरुद्ध उठने वाली आवाज का [illegible] पर समुचित असर होता है। पर ऐसे प्रत्येक [illegible] का [illegible] और

आदर की दृष्टि से देखता है जो उसे शांति और राहत दिला सके। अणुव्रत आन्दोलन उस जन-भावना के अनुकूल है। क्योंकि वह शोपण, उत्पीड़न और अनैतिकता की भावनाओं को दूर ढकेल कर ऐसी भाव-नाओं को उभारता है जो शान्ति में सहयोग देनेवाली हो और अर्थ की ईश्वरीय सत्ता के विरुद्धबगावतकरने वाली हो। यद्यपि गृही-जीवन के लिए अर्थ की अनिवार्य आवश्यकता मानी जा सकती है पर उसकी कुछ सीमा तो होनी ही चाहिए। सब बाँध और मर्यादाओं को तोड़कर अर्थाजन करना तटों को तोड़कर चलनेवाली नदी के समान भयंकर है। अणुव्रत यह प्रेरणा देते है कि जीवन का लक्ष्य धन सचय और विलासिता नही है, उसका लक्ष्य तो यह है कि उसे वर्तमान की अपेक्षा और विकसित किया जाय तथा स्व–पर कल्याणकारी बनाया जाय। अपने अस्तित्व को अपने ही लिएनही बल्कि सबके लिए निर्मुक्त कर दिया जाय। उसका सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय विशेप या किसी जाति, धर्म' वर्ग, और पैसे विशेप से नहीं है। यदि उसका किसी से सम्बन्ध है तो वह सीधा आत्मा से है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन उठे और विकसित हो, यही उसका सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है। समाज व्यक्ति से परे नही है। व्यक्ति सुधरेगा, तभीसमाज सुधरेगा अन्यथा नही। यदि कोई वर्तनों के ढेर को साफ करना चाहता है तो उसे एक एक बर्तन को साफ करना होगा, इस प्रकार वर्तनो का सारासमूह साफ हो जाएगा। समाज सुधार के लिए भी यही क्रम आवश्यक है। अणु-व्रतों में व्यक्ति २ की बुराई की ओर ध्यान दिया गया है और उन्हें खदेड़ निकालने का पर्याप्त प्रयत्न किया गया है। साधारण व्यक्तियों से लेकर विशिष्ट राज्याधिकारियों तक के लिए अणुव्रतो में उन उन विशेप नियमों का प्रवेश है जो उन उन वर्गों से विशेप सम्बन्धित है और जो उनकी बुराइयों पर सबल चोट करते है। असत्-साक्षी न देना, बिना टिकट यात्रा न करना, वेश्या व परस्त्री-गमन न करना, जूआ न खेलना, रूपये लेने खोलकर कन्या पुत्रादि का विवाह सम्बन्ध करना, मांस न

खाना, मद्य न पीना, शिकार न करना आदि आदि नियम [illegible] पूरक होते हुए भी सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है। इनके अतिरिक्त कुछ नियम ऐसे हैं जो भिन्न २ कार्य करने वालों [illegible] हैं, उदाहरणार्थ—

एक गाड़ीवान के लिये—पशुओं पर [illegible] से ज्यादा भार न लादना आदि।

एक मालिक के लिए—अपने आश्रित [illegible] पित भावना से विच्छेद न करना। आश्रित व [illegible] प्राणियों के प्रति क्रूर व्यवहार व प्रहार न करना।

एक डाक्टर के लिये— अपने लोभ के लिये रोगी की चिकित्सा में अनुचित समय न लगाना।

प्रमाणपत्र दाताओं के लिये—झूठा प्रमाण-पत्र न देना।

फैसला दाताओं के लिए—[illegible] फैसला न देना।

राज्य कर्मचारियों के लिए—घूस न लेना।

स्त्रियों के लिये—अपने भाई, पुत्र तथा अन्य पारिवारिक जनों के साथ और सौत, जेठानी, देवरानी व ननद आदि [illegible] के साथ दुर्व्यवहार न करना।

एक व्यापारी के लिए—राज्य-निषिद्ध वस्तु का व्यापार न करना। राज्य निषिद्ध वस्तु को दूसरे देश में [illegible] न बेचना। किसी चीज में मिलावट कर या नकली को असली बता कर न बेचना। क्रय विक्रय में झूठा तोल माप न करना। एक प्रकार का [illegible] कर दूसरे प्रकार की वस्तु न देना। [illegible] निवृत्ति से [illegible] न [illegible]। [illegible]

यह बहुत ही स्पष्ट हो जाता है कि अणुव्रत व्यक्ति व्यक्ति के हृदय को छू कर आत्मा को पवित्र बनाते है और आदर्श जीवन, सन्तुलित मस्तिस्क तथा सत्क्रियारत व्यक्तित्व की मूल भिति तैयार करते है और वह व्यक्ति सुधार को लक्ष्य बना कर चलने वाला यह अणुव्रत आंदोलन समाज सुधार तथा राष्ट्र सुधार को भी अपने में गर्भित कर लेता है ।। क्योंकि समाज और राष्ट्र नामक समष्टियो की कल्पना का मूल आधार व्यक्ति ही है, वह अपने आप में सत्य है जबकि समाज और राष्ट्र की सत्यता व्यक्ति की सत्यता पर ही निर्भर है ।
